ऐसी पाई है कि मस्जिद के इमाम मालूम होते हैं। जूआ वह नहीं खेलते, गुल्ली-डंडे का उनको शौक़ नहीं, जेब कतरते हुए कभी वह नहीं पकड़े गए। अलबत्ता कबूतर पाल रखे हैं, उन्हीं से जी बहलाते हैं। हमारी बीवी का यह हाल है कि मुहल्ले का कोई बदमाश जूए में क़ैद हो जाए तो उसकी माँ के पास हाल पूछने के लिए चली जाती हैं। गुल्ली-डंडे में किसी की आँख फूट जाए तो मरहम-पट्टी करती रहती हैं। कोई जेबकतरा पकड़ा जाए तो घंटों आँसू बहाती रहती हैं लेकिन वह बुज़ुर्ग जिनको दुनिया-भर की ज़बान मिर्ज़ा साहब कहते थकती है हमारे घर में "मूए कबूतरबाज़" के नाम से याद किये जाते हैं। कभी भूले से भी मैं आसमान की तरफ़ नज़र उठाकर किसी चील, कौए या गिद्ध को देखने लग जाऊँ तो रौशन आरा को फ़ौरन खयाल हो जाता है कि बस अब यह भी कबूतरबाज़ बनने लगा।

इसके बाद मिर्ज़ा साहब की तारीफ़ शुरू हो जाती है। एक दिन जब यह घटना हुई तो मैंने पक्का इरादा कर लिया कि इस मिर्ज़ा कमबख़्त को कभी न फटकने दूँगा। आख़िर घर सबसे पहले है। पति-पत्नी के परस्पर स्नेह के सामने मित्रों की ख़ुशी क्या चीज़ है। चुनांचे हम ग़ुस्से में भरे हुए मिर्ज़ा साहब के घर गए। दरवाज़ा खटखटाया। कहने लगे, 'अन्दर आ जाओ।" हमने कहा, "नहीं आते, तुम बाहर आओ।" ख़ैर, आख़िर अन्दर गया। बदन पर तेल मलकर एक कबूतर की चोंच मुँह में लिये धूप में बैठे थे। कहने लगे, "बैठ जाओ।" हमने कहा, "बैठेंगे नहीं।" आख़िर बैठ गए। मालूम होता है हमारे तेवर कुछ बिगड़े हुए थे। मिर्ज़ा बोले, 'क्यों भाई ख़ैरियत तो है।" मैंने कहा, "कुछ नहीं।" कहने लगे, "इस वक़्त कैसे आना हुआ ?"

अब मेरे दिल में फ़िक़रे खौलने लगे। पहले इरादा किया कि एक दम ही सब कुछ कह डालो और चल दो। फिर सोचा कि मज़ाक़ समझेगा, इसलिए किसी ढंग से बात शुरू करो। लेकिन समझ में न आया कि पहले क्या कहें। आख़िर हमने कहा, "मिर्ज़ा, भई कबूतर बहुत महँगे होते हैं।"

यह सुनते ही मिर्ज़ा साहब ने चीन से लेकर अमरीका तक के तमाम मज़दूरों को एक-एक करके गिनवाना शुरू किया। इसके बाद दाने की महँगाई के बारे में कहते रहे और फिर केवल महँगाई पर भाषण देने लगे। उस दिन तो हम यूँ ही चले आये लेकिन अभी खटपट का इरादा दिल में बाकी था। खुदा का करना क्या हुआ कि शाम को घर में हमारे सुलह हो गई। हमने कहा चलो अब मिर्ज़ा के साथ बिगाड़ने से क्या मिलेगा? इसलिए दूसरे दिन मिर्ज़ा से भी सुलह-सफ़ाई हो गई।

लेकिन मेरा जीवन कटु करने में एक-न-एक मित्र हमेशा सहायक होता है। ऐसा मालूम होता है कि प्रकृति ने हमारे स्वभाव में प्रभाव ग्रहण करने की शक्ति कूट-कूट कर भर दी है क्योंकि हमारी बीवी को हम में हर वक्त किसी-न-किसी मित्र की बुरी आदतों की झलक नज़र आती रहती है। यहाँ तक कि मेरा अपना व्यक्तित्व लुप्तप्राय हो चुका है।

शादी से पहले हम कभी-कभी दस बजे उठा करते थे वरना ग्यारह बजे। अब कितने बजे उठते हैं? इसका अन्दाज़ा वही लोग लगा सकते हैं जिनके घर नाश्ता ज़बरदस्ती सुबह के सात बजे करा दिया जाता है और अगर हम कभी इन्सानी कमज़ोरी के कारण तड़के न उठ सकें तो फ़ौरन कह दिया जाता है :

"यह उस निखट्टू नसीम की संगत का नतीजा है।"

एक दिन सुबह-सुबह हम नहा रहे थे। सर्दी का मौसम, हाथ-पाँव काँप रहे थे। साबुन सिर पर मलते थे तो नाक में घुसता था कि इतने में न जाने हमने किसी रहस्यमयी भावना से अभिभूत होकर अलापना शुरू किया और फिर गाने लगे, "सोरी छलबल है न्यारी।" इसे हमारा बहुत उजड्डपन समझा गया और इस उजड्डपन का असली स्रोत हमारे मित्र पंडित जी को ठहराया गया। लेकिन हाल ही में मेरे साथ एक ऐसी घटना घटी है कि मैंने सब मित्रों को छोड़ देने की कसम खा ली है।

तीन-चार दिन पहले का ज़िक्र है कि सुबह के वक्त रोशन आरा ने मुझ से

मायके जाने के लिए इजाज़त माँगी। जब से हमारी शादी हुई है रोशन आरा सिर्फ़ दो बार मायके गई है और फिर उसने कुछ इस सादगी और विनम्रता से कहा कि मैं इन्कार न कर सका। कहने लगी, "तो फिर मैं डेढ़ बजे की गाड़ी से चली जाऊँ ?"

मैंने कहा, "और क्या ?"

वह झट तैयारी में लग गई और मेरे मन में आज़ादी के विचार चक्कर काटने लगे यानी अब बेशक मित्र आयें, बेशक ऊधम मचाएँ, मैं बेशक खाऊँ, बेशक जब चाहूँ उठूँ, बेशक थिएटर जाऊँ। मैंने कहा, "रोशन आरा जल्दी करो, नहीं तो गाड़ी छूट जाएगी।"

साथ स्टेशन पर गया। जब गाड़ी में सवार कर चुका तो कहने लगी, "ख़त ज़रूर लिखते रहिये।"

मैंने कहा, "हर रोज़ और तुम भी।"

"खाना वक़्त पर खा लिया कीजिए और हाँ धुली हुई जुराबें और रूमाल अलमारी के निचले खाने में पड़े हैं।"

इसके बाद हम दोनों चुप हो गये और एक दूसरे के चेहरे को देखते रहे। उसकी आँखों में आँसू भर आये। मेरा दिल भी बेचैन होने लगा और जब गाड़ी रवाना हुई तो मैं देर तक स्तब्ध प्लेटफ़ार्म पर खड़ा रहा।

आखिर आहिस्ता-आहिस्ता क़दम उठाता किताबों की दुकान तक आया और पत्रिकाओं के पन्ने पलट-पलट कर तस्वीरें देखता रहा। एक अख़बार ख़रीदा और तह करके जेब में डाला और आदत के मुताबिक़ घर का इरादा कर लिया।

फिर ख़याल आया कि अब घर जाना ज़रूरी नहीं रहा। अब जहाँ चाहूँ जाऊँ। चाहूँ तो घंटों स्टेशन पर ही टहलता रहूँ। दिल चाहता था क़ला-बाज़ियाँ खाऊँ।

कहते हैं जब अफ़्रीक़ा के असभ्य लोगों को किसी सभ्य देश में कुछ दिनों तक रखा जाता है तो यद्यपि वे वहाँ के वैभव से बहुत प्रभावित होते हैं किन्तु

जब वापस जगलों में पहुँचते हैं तो खुशी के मारे चीखें मारते हैं। कुछ ऐसी ही हालत मेरे दिल की भी हो रही थी। भागता हुआ स्टेशन से बाहर निकला, स्वच्छन्द स्वर में तांगे वाले को बुलाया और कूद कर तांगे में सवार हो गया। सिग्रेट सुलगा लिया, टाँगें सीट पर फैला दीं और क्लब को रवाना हो गया।

रास्ते में एक बहुत जरूरी काम याद आया। तांगा मोड़कर घर की तरफ पलटा। बाहर ही से नौकर को आवाज दी।

"अमजद !"

"हुजूर।"

"देखो हज्जाम को जाके कह दो कि कल ग्यारह बजे आए।"

"बहुत अच्छा।"

"ग्यारह बजे, सुन लिया ना ? कहीं रोज की तरह फिर छह बजे न आ धमके।"

"बहुत अच्छा हुजूर।'

'और अगर ग्यारह बजे से पहले आए तो धक्के देकर बाहर निकाल दो।"

वहाँ से क्लब पहुँचे। आज तक कभी दिन के दो बजे क्लब नहीं गया था। अन्दर दाखिल हुआ तो सुनसान, आदमी का नाम-निशान तक नहीं। सब कमरे देख डाले—बिलियर्ड का कमरा खाली, शतरंज का कमरा खाली, ताश का कमरा खाली, सिर्फ खाने के कमरे में एक नौकर छुरियाँ तेज कर रहा था। उससे पूछा :

"क्यों वे आज कोई नहीं आया ?"

कहने लगा, "हुजूर आप जानते हैं इस वक्त भला कौन आता है।" बहुत निराशा हुई। बाहर निकल कर सोचने लगा कि अब क्या करूँ। और कुछ न सूझा तो वहाँ से मिर्जा साहब के घर पहुँचा। मालूम हुआ अभी दफ्तर से वापस नहीं आए। दफ्तर पहुँचा। देखकर बहुत हैरान हुए। मैंने सब हाल कहा। कहने लगे, "तुम बाहर के कमरे में ठहरो। थोड़ा-सा काम

रह गया है। बस अभी भुगता के तुम्हारे साथ चलता हूँ। शाम का प्रोग्राम क्या है?"

मैंने कहा, "थिएटर।"

कहने लगे, "बस बहुत ठीक है। तुम बाहर बैठो, मैं अभी आया।" बाहर के कमरे में एक छोटी सी कुरसी पड़ी थी। उस पर बैठकर इंतज़ार करने लगा और जेब से अख़बार निकाल कर पढ़ना शुरू कर दिया। शुरू से आख़िर तक सब पढ़ डाला और अभी चार बजने में एक घंटा बाक़ी था। फिर से पढ़ना शुरू कर दिया। सब इश्तिहार पढ़ डाले और फिर सब इश्तहारों को दुबारा पढ़ डाला।

आख़िरकार अख़बार फेंककर बिना किसी संकोच या ख़याल के जँभाई लेने लगा—जँभाई पर जँभाई, जँभाई पर जँभाई, यहाँ तक कि जबड़ों में दर्द होने लगा। इसके बाद टाँगें हिलाना शुरू कीं लेकिन इससे भी थक गया।

फिर मेज़ पर तबले की गतें बजाता रहा।

बहुत तंग आ गया तो दरवाज़ा खोल कर मिर्ज़ा से कहा :

"अबे यार अब चलता भी है कि मुझे इंतज़ार ही में मार डालेगा मरदूद कहीं का। सारा दिन मेरा ज़ाया कर दिया।"

वहाँ से उठकर मिर्ज़ा के घर गए। शाम बड़े लुत्फ़ में कटी। खाना क्लब में खाया और वहाँ से दोस्तों को साथ लिये थिएटर गए। रात के ढाई बजे घर लौटे। तकिये पर सिर रखा ही था कि नींद ने बेहोश कर दिया।

सुबह आँख खुली तो धूप लहरें मार रही थी। घड़ी को देखा तो पौने ग्यारह बजे थे। हाथ बढ़ाकर मेज़ पर से एक सिग्रेट उठाया और सुलगा कर तश्तरी में रख दिया और फिर ऊँघने लगा।

ग्यारह बजे अमजद कमरे में दाख़िल हुआ। कहने लगा, "हुज़ूर हज्जाम आया है।"

हमने कहा, "यहीं बुलाओ।"

यह ऐश बहुत दिनों के बाद मिला है कि बिस्तर में लेटे-लेटे हजामत

बनवा लें। इत्मीनान से उठे और नहा-धोकर बाहर आने के लिए तैयार हुए लेकिन तबीयत में वह खुशी न थी जिसकी उम्मीद लगाए बैठे थे। चलते वक्त अलमारी से रूमाल निकाला तो न जाने क्या खयाल दिल में आया कि वहीं कुरसी पर बैठ गया और पागलों की तरह उस रूमाल को तकता रहा। अलमारी का एक और खाना खोला तो एक रेशमी दुपट्टा नजर आया। बाहर निकाला, हल्की-हल्की इत्र की खुशबू आ रही थी। बहुत देर तक उस पर हाथ फेरता रहा। दिल भर आया, घर सूना मालूम होने लगा। अपने आप को बहुत सँभाला लेकिन आँसू टपक ही पड़े। आँसुओं का गिरना था कि बेकरार हो गया और सचमुच रोने लगा। सब जोड़े बारी-बारी निकाल कर देखे लेकिन न जाने क्या-क्या याद आया कि और भी बेकरार होता गया।

आखिर न रहा गया। बाहर निकला और सीधा तारघर पहुँचा। वहाँ से तार दिया कि बहुत उदास हूँ, तुम फौरन आ जाओ।

तार देने के बाद दिल को कुछ इत्मीनान हुआ। यकीन था कि रौशन-आरा अब जितना जल्द हो सकेगा आ जाएगी। इससे कुछ ढाढ़स बँध गई और दिल पर से जैसे एक बोझ हट गया।

दूसरे दिन मिर्ज़ा के घर पर ताश का प्रोग्राम था। वहाँ पहुँचे तो मालूम हुआ कि मिर्ज़ा के पिता से कुछ लोग मिलने आए हैं, इसलिए यह तय हुआ कि यहाँ से किसी और जगह सरक चलो। । हमारा मकान तो खाली था ही। सब यार लोग वहीं जमा हुए। अमजद से कह दिया गया कि हुक्के में जरा भी गड़बड़ी हुई तो तुम्हारी खैर नहीं और पान इस तरह से लगातार पहुँचते रहें कि बस तांता बँध जाए।

अब इसके बाद की घटनाओं को कुछ मर्द ही अच्छी तरह समझ सकते हैं। शुरू-शुरू में तो ताश कायदे के साथ होता रहा। जो खेल भी खेला गया बहुत उचित तरीके से, नियम के अनुसार और गंभीरता के साथ लेकिन एक-दो घंटे के बाद कुछ हँसी-मजाक शुरू हुआ। यार लोगों ने एक दूसरे के पत्ते देखने शुरू कर दिये। यह हालत थी कि आँख बची नहीं

और एक-आध काम का पत्ता उड़ा नहीं और साथ ही क़हक़हे पर क़हक़हे उड़ने लगे। तीन घंटे के बाद यह हालत थी कि कोई घुटने हिला-हिलाकर गा रहा है, कोई फ़र्श पर बाज़ू टेके सीटी बजा रहा है, कोई थ्येटर का एक आध मज़ाक़िया फ़िक़रा लाखों बार दोहरा रहा है लेकिन ताश बराबर हो रहा है। थोड़ी देर के बाद धौल-धप्पा शुरू हुआ। इन अठखेलियों के दौरान में एक मसखरे ने एक ऐसे खेल का प्रस्ताव कर दिया जिसके आख़िर में एक आदमी बादशाह बन जाता है, दूसरा वज़ीर, तीसरा कोतवाल और जो सब से हार जाता है वह चोर। सब ने कहा, "वाह-वाह क्या बात कही है!" एक बोला, "फिर आज जो चोर बना उसकी शामत आजाएगी।" दूसरे ने कहा, "और नहीं तो क्या। भला कोई ऐसा वैसा खेल है। सलतनतों के मामले हैं सलतनतों के।"

खेल शुरू हुआ। दुर्भाग्य से हम चोर बन गए। तरह-तरह की सज़ाएँ बताई जाने लगीं। कोई कहे, "नंगे पाँव भागते हुए जाइये और हलवाई की दुकान से मिठाई ख़रीद के लाइये।" कोई कहे, "नहीं, हुज़ूर सब के पाँव पड़े और हर एक से दो-दो चाँटे खाए।" दूसरे ने कहा, "नहीं साहब, एक पाँव पर खड़ा होकर हमारे सामने नाचे।" आख़िर में बादशाह सलामत बोले, "हम हुक्म देते हैं कि चोर को काग़ज की एक लम्बोतरी नोकदार टोपी पहनाई जाए और उसके चेहरे पर स्याही मल दी जाए और यह उसी हालत में जाकर अन्दर से हुक्क़े की चिलम भर कर लाए।" सब ने कहा, "क्या दिमाग़ पाया है हुज़ूर ने। क्या सज़ा बताई है, वाह वाह!"

हम भी मज़े में आए हुए थे। हमने कहा, "तो हुआ क्या? आज हम हैं, कल किसी और की बारी आजाएगी।" बहुत हँस कर अपने चेहरे को पेश किया। हँस-हँस कर वह बेहूदा-सी टोपी पहनी। चिलम उठाई और ज़नाने का दरवाज़ा खोलकर रसोई-घर को चल दिये और हमारे पीछे कमरा क़हक़हों से गूँज रहा था।

आँगन में पहुँचे ही थे कि बाहर का दरवाज़ा खुला और बुर्का पहने हुए एक औरत अन्दर दाखिल हुई। मुँह से बुर्का उलटा तो रोशन आरा।

दम खुश्क हो गया। बदन जैसे काँपने लगा। ज़बान बन्द हो गई। सामने वह रोशन आरा जिसको मैंने तार देकर बुलाया था कि तुम फौरन आ जाओ, मैं बहुत उदास हूँ और अपनी यह हालत कि मुँह पर स्याही मली है, सिर पर वह लम्बोतरी-सी कागज़ की टोपी पहन रखी है और हाथ में चिलम उठाए खड़े हैं और मर्दाने से कहकहों का शोर बराबर आ रहा है।

मेरे प्राण सूख गए और मैं अपने हवास में नहीं रहा। रोशन आरा कुछ देर तो चुपकी खड़ी देखती रही और फिर कहने लगी—लेकिन मैं क्या बताऊँ कि क्या कहने लगी? उसकी आवाज़ तो मेरे कानों तक जैसे बेहोशी की हालत में पहुँच रही थी।

अब तक आप इतना तो जान गए होंगे कि मैं खुद बहुत शरीफ हूँ। जहाँ तक मैं मैं हूँ मुझ से अच्छा पति दुनिया पैदा नहीं कर सकती। मेरी ससुराल में सब की यही राय है और मेरा अपना ईमान भी यही है लेकिन इन दोस्तों ने मुझे कलंकित कर दिया है। इस लिए अब मैंने पक्का इरादा कर लिया है कि अब या घर में रहूँगा या काम पर जाया करूँगा। न किसी से मिलूँगा और न किसी को अपने घर आने दूँगा सिवाय डाकिये या हज्जाम के और इनसे भी बहुत संक्षेप में बातें करूँगा। "खत है?" "जी हाँ।", "दे जाओ, चले जाओ।", "नाखून तराश दो।", "आप जाओ।"

बस इससे ज़्यादा बात न करूँगा, आप देखिये तो सही।

खो गया

अज़ीम बेग चुग़ताई

: १ :

स्टेशन पर ख़ानम[1] ने टिकट सँभालते हुए कहा : "देखो सफ़र लम्बा है और इंटर क्लास की गड़बड़, कहीं खो न जाना फिर।"

मैंने ग़ौर से इस अहमक़ बीवी को देखा। क्या यह पौरुष का अपमान नहीं ? अरे ओ हौआ की बेटी, ज़रा ग़ौर कर कि यह बुरक़ा चेहरे से हटाकर सिर पर डालते ही तेरे होश जाते रहे, गोया पर निकल आए। मैंने कुछ बिगड़ कर कहा :

"तो हम कोई बच्चा तो हैं नहीं।"

"माफ़ कीजिए" ख़ानम ने व्यंग करते हुए कहा; "जैसे आप कभी पहले तो खो नहीं गए हैं।".

मैं क्या बताऊँ मुझे कैसा ग़ुस्सा आया है। ज़रा कोई इस मुंतज़िम बीवी से पूछे कि पहले तू यह बता कि तेरा मियाँ तुझे पहुँचाने जा रहा है या तू उसे पहुँचाने जा रही है ? वह तेरा ज़िम्मेदार है या तू उसकी हिफ़ाज़त कर रही है। मैं मानता हूँ कि एक बार सफ़र में मुझसे लोटा खो गया। दो दफ़ा

---

१. पत्नी

मरदी चोरी हो गई। एक बार कोई मुझे सोते में जूता लेकर चम्पत हो गया और एक दफ़ा कोई बिस्तर ही लेकर लम्बा हुआ। एक बार टिकट खो गए और एक स्टेशन पर इत्तिफ़ाक़ से मैं खुद रह गया। यह कहना कि ये सब चीज़ें न तो चोरी गईं न रह गईं बल्कि खो गईं—यह मानने को तो मैं तैयार हूँ मगर आप खुद इन्साफ़ करें कि यह मैं क्योंकर मान लूँ कि मैं भी रह नहीं गया था बल्कि खो गया था। लाहौलवलाकुव्वत कोई बैल-बधिया हो गया या ऊँट हो गया जो मैं खो गया। दुनिया-जमाने के शौहर और अच्छे-अच्छे ग्रेजुएट सफ़र की गड़बड़ और चक्कर में स्टेशनों पर रह जाते हैं तो क्या उनकी बीवियाँ यही कहती फिरती होंगी कि मियाँ खो गए। मुझे गुस्सा आया इस खुदा की बन्दी पर कि देखो तो इसके खयाल में रह जाने और खो जाने में कोई फ़र्क ही नहीं है। लिहाजा मैंने झल्ला कर कहा, "मत फ़िज़ूल बातें करो।"

× × ×

दो कुली थे। खानम ने कहा था कि जल्दी से बैठेंगे ताकि कहीं जगह न घिर जाए। मैंने उसकी राय मान ली थी और बदकिस्मती से रेल में जल्द बैठने-बिठाने का ज़िम्मेदार मैं खुद को समझ रहा था। चुनांचे जैसे ही गाड़ी आई कुलियों को जल्दी की ताकीद करके मैं औरतों के डिब्बे की तरफ चला। *अब इस मुंतज़िम बीवी की हिमाकत देखिये। हम यह समझे कि हम मुंतज़िम* और वह समझीं कि वह अहमक है और मैं ज़िम्मेदार। नतीजा यह कि एक कुली को लेकर मैं पहुँचा औरतों के डिब्बे के पास और दूसरे कुली को लेकर वह पहुँची मर्दाने दर्जे में। हम तेज़ी से सामान जो रखवाते हैं तो क्या देखते हैं कि दूसरा कुली और बीवी गायब। खयाल भी न था कि ऐसा होगा। कुछ इन्तज़ार किया, फिर उसी जगह वापस आ गए जहाँ खड़े थे मगर तोबा कीजिए यह मामला कि जैसे घरवाली खो गई। इसका तो हमें इत्मीनान है कि किसी अकलमन्द की किस्मत ने जो अगर कहीं धोखा खाया और वह उठा ले गया तो न सिर्फ़ इस मुसीबत को लेकर पछताएगा बल्कि खुशामद करके वापस ही करते बनेगी।

ख़ैर ! अब मामला यह हुआ कि हम प्लेटफ़ार्म पर बौखलाए फिर रहे थे कि दूसरे क़ुली ने हमें पहचान लिया और बताया कि मर्दों के इंटर क्लास के डिब्बे में सामान रख दिया है। बाक़ी सामान भी लेकर वहीं चलिये। चुनांचे पहुँचे हम, मालूम हुआ यहीं बैठना है। ख़ैर कोई हर्ज नहीं, अक्सर ऐसा करते हैं और कोई तकलीफ़ नहीं होती। सिर्फ़ किसी सुन्दरी की तरफ़ अलबत्ता नज़र उठाने की हिम्मत नहीं पड़ती है और दो तेज़ और शक्की निगाहें दो मासूम और कमज़ोर आँखों पर पहरा लगाए रहती हैं। इधर किसी नकटी-चिपटी औरत के पाँव के गहने की आवाज़ छम से आई नहीं कि उधर ख़ानम की आँखें बग़ैर उस औरत को देखे हुए मेरी आँखों पर कि कहीं उसे देखता तो नहीं हूँ।

क़िस्सा मुख़्तसर, बाक़ी सामान भी यहीं आगया। जगह काफ़ी थी और अब हम जम कर बैठ गए इत्मीनान से और फिर बहुत जल्द हमें यह मालूम हो गया कि ऐसा क्यों किया गया है। सिर्फ़ इसलिए कि न तो हम कहीं ख़ुद खो सकें और न लोटा-बोटा फेंक सकें। फिर टीप का बंद सुनिये, "तुम्हें बार-बार पैसे के लिए दौड़कर आना पड़ता।"

× × ×

हमने कहा कि "हिन्दुस्तान टाइम्स" ख़रीदेंगे ताकि ताज़ा ख़बरें पढ़ सकें। जवाब में हमें तस्वीरदार साप्ताहिक 'टाइम्स' दिखाया गया जो पाँच छह दिन का बासी था और क़ुली से पहले ही मंगवा लिया गया था। अब हुक्म यह देखिये कि इसमें ख़बरें हैं, गो फिलहाल हमें भी तस्वीर ही देखनी थी। जब हमने कहा कि यह तो पुराना है तो जवाब मिला कि "सब ठीक है।" और फिर जब हमने नई ख़बरों का ज़िक्र किया तो जवाब मिला, "जल्दी क्या है ? ख़बरें आगे चलकर किसी से पूछ लेना वरना कोई और ख़रीदेगा तो उससे मांगकर पढ़ लेना।" चलिये छुट्टी हुई। ख़ैर सब्र किया।

: २ :

गाड़ी चली और बहुत जल्द हमने पास के बैठने वालों से बातें करना शुरू कर दीं। एक मुसाफ़िर ने जिसका लिबास ख़ाकी और सूरत बहुत गम्भीर

भी मुझे बड़े गौर से सिर से पैर तक देखा—इस तरह कि मुझे शक हुआ कि अब यह कहता है कि मैंने आपको कहीं देखा है लेकिन बहुत जल्द मालूम हो गया कि यह बात नहीं है बल्कि वजह और है। वह यह कि मैं बहुत ही रद्दी सूट पहने हूँ जैसे कि मालूम दे किसी गोरे के सौजे में गया था और वहाँ उसके दादा का सामान नीलाम हो रहा था, उसमें से ले आया। इन हज़रत ने मुझे शक की निगाह से देखकर खानम की तरफ इशारा करके कहा।

"यह कौन है ?"

मैं : "क्यों ? यह…… "

वह : "आप इनके साथ हैं ?"

मैं . "जी हाँ…… "

वह : (बात काटकर) "नौकर हैं आप ?"

मैं : "जी क्या फरमाया आपने ?" (हालांकि मैंने सुन लिया था)।

वह : "मेरा यह मतलब है कि आप ……" (खामोश)।

मैं : (गर्व से), "मेरी बीवी है यह।"

वह : "बीवी !" (इस तरह गोया मैं झूठ बोलता हूँ, झक मारता हूँ)

मैं : "जी हाँ।"

यह कहकर मैंने उस आदमीनुमा वहशी जानवर को देखा। उसकी मुस्कराहट और आँखों की गुस्ताखी से भरी हुई हरकत। गोया वह यक़ीन नहीं कर सकता और नहीं करेगा। कैसा मुझे गुस्सा आया है इस वहशी पर कि बयान नहीं कर सकता। बातचीत खत्म करने के बाद यानी यक़ीन करने से इन्कार करने के बाद वह सिग्रेट का धुआँ दूसरी तरफ एक हुँकारे के साथ छोड़ने नहीं लगा बल्कि गोया मुझ से कह रहा था कि, "तू झूठ बकता है।"

मैं भला यह कब बरदाश्त कर सकता था। मैंने उनका हाथ पकड़कर अपनी ओर आकर्षित करते हुए कहा, "जनाब को इसके बारे में आखिर शक क्यों हुआ ?"

मैंने बहुत धीरे से कहा कि खानम न सुनलें वरना मेरा नाक में दम

कर देती कि ऐसी बात शुरू हो गयी की लेकिन उस बदतमीज़ और झक्की को तो देखिये कि उपहास के स्वर में "हूँ" से धुआं मुँह से निकाल कर कहता है :

"जी ···मगर धीरे बोलिये।"

यह कहकर उसका लापरवाही से दूसरी तरफ़ मुँह करके धुआं उड़ाने लगना। मैं जलकर कबाब हो गया। मैंने दिल में कहा—"तू मत यक़ीन कर झक्की जानवर, जा चूल्हे में। बीवी तो वह हमारी सोलह आने है। भाड़ में पड़ तू। हमारी बला से जहन्नम में जा। मत यक़ीन कर।"

: ३ :

उसके बाद मैंने अपना मुआइना ग़ौर से किया। सुना करते थे कि पहले ज़माने में लोग कपड़े घड़ों में रखते थे—जब सन्दूक़ का बहुत रिवाज न था। आज पता चला कि यह बात बिलकुल ग़लत है। बात असल में यूँ होगी कि ऐसे लोगों की बीवियाँ मैले कपड़े निकाल कर अपने शौहरों को ज़बरदस्ती पहना देती होंगी। चुनांचे मुझे खानम पर बहुत गुस्सा आया। खिसक कर ज़रा पास आया। वह समझी कि मैं कुछ ज़रूरी बात कहना चाहता हूँ। लिहाज़ा उसने भी कान आगे बढ़ाया और मैंने चुपके से उसके कान में कहा—क्यों जी यह तुम ने आख़िर हमें समझा क्या है ?"

इसके जवाब में उसने मुझे भौंहें सिकोड़ कर इस तरह देखा कि मुझे यह शक हुआ कि ज़बान से कहने की बजाय दिल में कह रही है—"अहमक़।"

एकायक मुझे उसके इस तरह गुस्ताख़ी से देखने पर और भी गुस्सा आया और फिर मैंने उसी तरह कहा।

"आख़िर तुमने हमें समझ क्या रखा है ?"

"हूँ" उसने आख़िर को कहा, "ख़ैर तो है ?"

मैंने भिन्ना कर कहा, 'ये हमारे अच्छे-अच्छे सूट महँगे वाले बल्कि सेकंड क्लास में सफ़र करने वाले सूट और उम्दा-उम्दा टाइयाँ वग़ैरह आख़िर किस दिन के लिये तुमने बनवा रक्खी हैं ? क्यों नहीं आख़िर तुम

पहनने देतीं ? चलते वक्त हमने तुम से कितना और कैसे-कैसे कहा कि यह सूट मैला और दस दफा का पहना हुआ है जिससे दो चार बार जूता भी पोंछा जा चुका होगा । यह क्यों पहनने को दिया ? क्यों नहीं तुमने······?"

बात काट कर वह भी धीरे मगर तेजी से बोली · "पागलों की सी बातें तो करो मत । जानते हो सफर में कपड़े खराब होते हैं ।"

अब आप ही इन्साफ कीजिए कि ऐसे नामाकूल जवाब से मैं क्यों कर कबाब न हो जाता । खुद तो पहने हुए है रेशम के कपड़े, रेशम के मोजे, ग्यारह रुपये वाला जूता और हम पहने हुए हैं एक मैला कुचैला सूट, टाई ऐसी जैसे भंगिन का कमरबन्द और कालर ऐसा जैसे टामी का पट्टा और पैर में हमारे एक अंग्रेजी जूता । इनके कपड़े तो मैले न होंगे और हमारे हो जाएँगे । खुदा जाने बदसूरत शौहरों की खूबसूरत बीवियों ने दिल में क्या सोच रखा है । मैं जल ही तो गया और मैंने बल खाकर कहा :

"और यह तुम जो अपने अच्छे-अच्छे कपड़े पहने हो ? ये मैले न होंगे ?"

"रेल में ये बातें नहीं ·····" यह कहकर गोया एक घसीट का पेंच था कि भींच कर वह डाटा और जवाब आँखों से गुस्सा जाहिर करते हुए खतम ।

मैंने भिन्ना कर गुस्से का घूँट सा पिया मगर सब्र न हुआ और फिर मैंने जोश में आकर कहा :

"आखिर यह भी कोई····· ···"

मगर मेरी बात तेजी से काट दी गई—यह कह कर कि "और जो सफर में कोई मिलने-जुलने वाली मिल जाए तो ? · ····· बस बधा बनते हैं ।"

यह कह कर दूसरी तरफ मुँह मोड़ लिया । मतलब यह कि आगे बहस करना नहीं चाहती ।

मैं सिवाय इसके क्या करता कि जलता और भुनता रहा । इतने में गाड़ी रुकी । एक रब इन्स्पेक्टर साहब अपनी फौज और इतने सामान के साथ गाड़ी में घुसे कि खुदा की पनाह । घबरा कर खानम ने कहा, "हमें सेकंड क्लास का टिकट बनवा दो·········जल्दी·········जल्दी ।"

६०९२

मैंने कहना चाहा—"मगर ....."

"जल्दी......यह लो ....जल्दी जल्दी।" यह कहकर मुझे टिकट दे दिये और फिर "जल्दी करो।"

मैंने सोचा कि अच्छा है, सेकंड क्लास में चल कर उससे खूब लडूँगा और फ़ौरन दूसरा सूट निकलवा कर पहनूँगा। लिहाजा मैं टिकट बनवाने दौड़ा।

: ४ :

इन रेलवे के बाबुओं को इतनी जँभाइयां आती हैं और फिर ऐसी-ऐसी कि छोटी-छोटी आँखें मोटे-मोटे चेहरों पर खो जाती हैं। दिल का खून सिमट कर नाक की फुनंग पर आ जाता है और फिर इसके साथ अंगड़ाइयाँ अलावा—ऐसी बेतुकी और बेमौक़ा कि बयान से बाहर। यह नहीं देखते कि हमारा वजन क्या है और जिस कुर्सी पर हम खुद धरे हुए हैं वह कैसी है। उन्हें तो इससे बहस ही नहीं, बस अंगड़ाई लेने से काम। मैंने तो कहा कि हजरत मुझे कानपुर से सेकंड क्लास के टिकट बनवाना हैं। उधर इसके जवाब में पहले तो उन्होंने मुझे ग़ौर से देखा और शायद किसी मामूली अंग्रेज का बटलर समझ कर अंगड़ाई लेना मुनासिब समझा (जँभाई के साथ)। कुर्सी जो चर-चराई तो एकदम से ऐसा मालूम हुआ कि जैसे जादू के ज़ोर से चेहरे पर आँखें पैदा हो गईं। यह इटावा का स्टेशन था और मैं पुल पार करके प्लेट-फ़ार्म के उस तरफ़ गया था टिकट बनवाने। बाबू जी ने बड़ी मेहरबानी की जो कुछ देर बाद एक लापता टिकट चेकर का हवाला दे दिया। मैं उनकी तलाश में लग गया और उन्हें हर जगह तलाश किया। कोई जगह न छोड़ी सिवाय स्टेशन के पायखाने के। ग़रज़ इसी तलाश में था कि वह खुद मुझे तलाश करते आ पहुंचे। मैंने टिकट हवाले करके बदलने की फ़रमाइश की तो उन्होंने कहा "दाम" और मैंने जवाब में कहा "अरे!" रुपये-पैसे का बटुआ खानम के पास। लिहाजा दौड़ा एक दम से टिकट-विकट छोड़कर दाम लेने। दौड़ा ही था कि खयाल आया कि कहीं टिकट चेकर टिकट लेकर ग़ायब न हो जाए, इस लिए दौड़ा वापस और उधर रेल ने दी सीटी। जब तक मैं

झपट कर उनके हाथ से टिकट वापस लूँ रेल चल दी और बजाय पुल पार करने और उस तरफ पहुँचने के मैं रेल की पटरी फाँद कर दौड़ा बुरी तरह और जो डिब्बा सामने आया उसी में बैठ गया। अब हाँफते-काँपते खिड़की से सिर निकाल कर जो देखता हूँ तो रेल तो प्लेटफ़ार्म से बाहर और खानम खड़ी है सामान के साथ। बौखलाया हुआ तो आया ही था, बस देखते ही उछल पड़ा। इरादा किया कि खिड़की खोलकर कूद जाऊँ मगर एक बड़े मियाँ बैठे थे मोटे से। उन्होंने शायद सोचा कि यह बावला है, लिहाज़ा मेरा हाथ पकड़ लिया। जल्दी में झटके पर झटके देता हूँ मगर हाथ नहीं छूटता। वह न मालूम क्या पूछते हैं और मैं क्या कहता हूँ। खिड़की बन्द करते हुए उन्होंने मुझे छोड़ा तो मैं जंजीर खींचने दौड़ा। दो-तीन झटके दिए लेकिन वह भला कहाँ हिलती। दूसरों से कहता हूँ तो वे वजह पूछते हैं। यह सब देखते ही देखते हो गया वजह बताई तो फिर बड़े मियाँ ने हाथ पकड़ कर बिठा लिया और कहा: "आखिर इतनी घबराहट क्यों है। अगले स्टेशन से तार दे देना और दूसरी गाड़ी से वापस आ जाना।"

मेरी समझ में बात आ गई। झाँक कर फिर खानम को देखने की कोशिश की। ख़याल आया कि ठीक है ऐसा हो चुका है। उस बार जब रह गया था तो खानम चली गई थी। बाद में उसने कहा था कि "मैंने ग़लती की। अगले स्टेशन पर उतर कर तुम्हें तार दे देती और तुम आ जाते।" "ठीक है," मैंने कहा, "मैं खुद पहुँच कर आगे तार दे दूँगा और वह आ जाएगी।"

: ५ :

दूसरा स्टेशन जहाँ एक्सप्रेस रुकती थी यशवन्तनगर था। वहाँ उतरा तो पहले से तार मौजूद था। लिखा था कि इस नाम के आदमी को रेल के डिब्बे से यह कह कर उतार लो कि तुम्हारी बीवी इटावे पर उतर गई है। मैं उतर ही चुका था। मेरे पास तार के पैसे भला कहाँ मगर मालूम हुआ कि तार मुफ़्त दिया जाएगा। लिहाज़ा मैंने तार दिलवा दिया कि उतर पड़ा हूँ। घबराना मत, दूसरी गाड़ी से चली आओ।

मेरे यहाँ पहुँचने के थोड़ी ही देर बाद एक मालगाड़ी इटावा जा रही थी। मैंने दिल में सोचा कि विरह और जुदाई के सदमे कौन उठाए। इससे बेहतर है चले न चलो। मालूम हुआ कि सेकंड क्लास का टिकट लेना पड़ेगा। जब हमने कहा कि रुपये नहीं हैं तो यह भी तय हो गया कि अच्छा तुमको मुफ़्त पहुँचा दिया जाएगा। हमने कहा बेहतर है और खुश थे कि गार्ड साहब ने बड़े इत्मीनान से प्रोग्राम बताया यानी यह कि इतना तो यक़ीन था कि कभी न कभी यह गाड़ी जरूर जाएगी मगर यह पता न था कि वहाँ पहुँचेगी कब? सवारी गाड़ी जो उसके बाद जाएगी उससे पहले या बाद में? पूछताछ की तो मालूम हुआ कि सवारी गाड़ी बीच के किसी स्टेशन पर नहीं रुकेगी और यह जरूर रुकेगी। पहुँचने के बारे में उम्मीद थी कि सवारी गाड़ी से कुछ पहले पहुँचेगी लेकिन जो ऐसा न हुआ तो फिर शायद सवारी गाड़ी के भी आध घण्टे बाद पहुँचे और फिर फ़िलहाल तो यही पता नहीं था कि यह गाड़ी छूटेगी कब। "जहन्नम में जाए ऐसी गाड़ी" हमने कहा और इरादा बदल दिया और लगे सवारी गाड़ी का इन्तज़ार करने।

इन्तज़ार बुरी चीज है और फिर ऐसे मौक़े पर। तंग आकर हमने भी एक कुरसी पर बैठकर, आँखें आधी बंद करके पैर हिलाना शुरू कर दिया, यहाँ तक कि थक गए। फिर बड़ी देर तक आँखें खोलकर सीटी बजाते रहे। इसके बाद फिर पैर हिलाए। ख्वाहमख्वाह घड़ी बार-बार देखी। शक हुआ सूइयाँ चल नहीं रही हैं। कान से कई बार लगाकर देखा। बार-बार अपनी घड़ी में वक्त देखा और स्टेशन की घड़ी देखने गये। कुछ बस न चला तो खयाल आया कि लाओ न सही कुछ पानी ही पीयें। पानी पीने जा रहे थे कि खयाल आया पेड़ा खाकर पानी पीना ठीक रहेगा। पहुँचे पेड़े वाले के पास। कहा—दो आने के पेड़े देना। वह तौलने को हुआ तो खयाल आया पैसे? फ़ौरन उससे पेड़ों का भाव पूछ कर महँगे होने की वजह से न खरीदने का बहाना किया और वहाँ से सीधे प्लेटफ़ार्म के कगर पर चहलक़दमी शुरू की। बहुत जल्द तय कर लिया कि इस तरह चहलक़दमी करना चाहिये कि हर क़दम नपा-तुला पत्थर के टुकड़े के अन्दर ही पड़े। चुनांचे इस इन्तज़ाम

ने प्लेटफार्म के किनारे-किनारे टहल कर उनके दफ्तर को ढूंढ़ लिया । इसके बाद सिग्नलों को आकर दबाना शुरू किया । एक कुली ने आकर स्टेशन मास्टरजी साब से रोका और बताया कि यह काम तो जुर्म बना है—गरज कि हम क्या बताएं कि किस तरह हमने वक्त काटा है ।

: ६ :

हमारी तरफ़ से लाहौर की तरफ़ गाड़ी जाने वाली थी और उसी का हमें इन्तज़ार था । गाड़ी आई और हम बगैर टिकट लिये बैठ कर रवाना हुए क्योंकि हमारे पास टिकट मौजूद ही थे । रवाना हुए तो आखिर क्यों न पहुँचते । पहुँचे और यह सोचकर कि जोन वेटिंग रूम में बैठी होगी । उसमें बेधड़क घुसे चले गये । वहां सामान की बजाय एक मोटा सा अंग्रेज़ बैठा था । उसने सोचा होगा बरबस किधर से घुस आया । उसने डांटा । उलटे पाँव वहां से लौटे । हमें क्या पड़ी कुरता कि अंग्रेज़ से उलझें या उसे जवाब दें । इधर देखा, उधर देखा । दिल में तरह-तरह के शक हो रहे थे कि एक बाबू साहब मिले । उनसे हमने पूछा :

'क्यों जनाब ?'

"फ़रमाइये ।"

मैंने कहा—"यहां पर एक मुसलमान लेडी ...... मुसलमान औरत ....."

"हां-हां"—वह बोले—"वही ना जिनके मियां उन्हें यहां छोड़कर भाग लिये । गरीब मुहब्बत है वह भी"—(एकदम से कुछ रुक कर) : "मगर आप ? ......वह तो गई शायद ।"

"कहां गई ?" मैंने दुबका रखते हुए कहा ।

"अगले स्टेशन पर शायद मुज़फ्फ़रनगर ।"

"क्या ? कैसे ?" मैंने घबराकर पूछा ।

"मालगाड़ी पर गईं । सामान तो जाते मैंने देखा था—ज़रूर गई होंगी... मगर आप ?" उन्होंने मुझे सिर से पैर तक देखा । मैंने कहा, "वह मेरी बीवी

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] उतर ही गया था।"

अब बताइये कि मैं उन [illegible] से क्या कह देता कि तुम उतर [illegible]। उनकी समझ में नहीं तो समझते, यदि बहस करते। [illegible] कुछ पता कि इस सफ़र में [illegible] कि गाड़ी पहले उतर [illegible] मुझे रेलवे वाले! अभी एक बकवास करने वाले और नालायक [illegible] न मानना था न माने। फ़ायदा न होना था न हुए। ख़ैर, मैंने [illegible] कि उनके दिमाग़ रेल की गाड़ियों और इंजनों की 'छक-छक' और [illegible] ने उड़ा दिये हैं और फिर नाहक एक वावेला—उसने भी कुछ लगा [illegible] लिहाज़ा ये सब क़ाबिले रहम हैं। लिहाज़ा उन लोगों को तो मैंने [illegible] पर छोड़ा और कहा उनसे कि ख़ैर [illegible] और ग़लती मेरी सही, [illegible] इतनी अक़्लमंदी करें कि एक तार दे दें उसको अगले स्टेशन पर [illegible] हूँ मगर ख़बरदार अब तुम वहीं रहना।

: ७ :

इसके बाद मैंने सोचा कि क्या करना चाहिये । गाड़ी में बहुत वक्त था । भूख लग रही थी । सोचा कि ज़रा शहर में चलकर इस्लामिया स्कूल के पुराने साथियों में से किसी को ढूंढें । चुनांचे पहुँचे हम एक साहब के यहाँ जिन्हें हमने वर्षा हुआ आठवीं जमात में छोड़ा था और यकीन था कि आ गये होंगे नवीं जमात में । खुशकिस्मती कि वह मिल गये और खूब मिले । जो बातें होती है वही हुईं । उनका ज़िक्र बेकार है ।

अब यहाँ एक गलती हमसे हो गई—वह यह कि गाड़ी का ठीक वक्त मालूम करना भूल गए । गाड़ी का इस किस्म का नाम याद रह गया जैसे साढ़े दस बजे वाली, पौने पाँच बजे वाली वगैरह । यह गलती हमने उस वक्त महसूस की जब गाड़ी का वक्त करीब आया और हमने अपने दोस्त से चलने को कहा । उन्होंने यह यकीन दिलाते हुए रोकने की कोशिश की कि गाड़ी में अभी देर है, लिहाज़ा कुछ देर रुकने के बाद अन्दाज़न चल दिये । स्टेशन पर पहुँचे । जब तक इक्के से उतरे गाड़ी प्लेटफार्म छोड़ चुकी थी ।

या मेरे अल्लाह ! अब मैं क्या करूँ । दोस्त से पैसे लेकर खानम को तार दिया कि गाड़ी छूट गई और दूसरी गाड़ी से जरूर पहुँचते है ।

तार देने को तो दे दिया हमने मगर अब यह सोच रहे थे कि क्या होगा ? शामत आ जाएगी । वह लड़ाई होगी कि बयान से बाहर, मगर अब मजबूरी थी । दोस्त को यह सज़ा दी कि उनसे कहा अब बैठो हमारे साथ और हम चले जाएँ तब जाना ।

गाड़ी आई और हम चढ़े । यदावन्त नगर स्टेशन आया । हम समझते थे कि स्टेशन पर सामान लिये तैयार खड़ी मिलेंगी मगर वहाँ कोई भी नहीं । जल्दी से उतरे और एक कुलीनुमा आदमी से पूछा तो उसने जवाब दिया कि सो रही होंगी वेटिंग रूम में । चुनांचे यह सुनते ही मैं वेटिंग रूम की तरफ़ दौड़ा और ज़ोर से साथ ही कुली को भी आवाज़ दी । क्या देखता हूँ कि दरवाज़ा बन्द,

वह भी अन्दर से। गजब हो गया। मैंने दिल में कहा सो रही है घोड़े बेच कर और यहां गाड़ी निकली जाती है। झांक के देखा तो अंधेरा। जानता ही था कि बगैर बत्ती गुल किये उसे नींद ही नहीं आती। अब मैंने बदहवास होकर किवाड़ धड़धड़ाना शुरू किये, मगर वहां जवाब नदारद। इतने में रेल ने सीटी दी। मैं और भी घबरा गया। समझ में न आया कि क्या करूँ। नाउम्मीद होकर अपने डिब्बे की तरफ़ लपकने को हुआ कि टोपी तो ले लूँ कि एक कुली ने रोका। रेल ने एक और सीटी दी। कुली से मैंने कहा "ठहरो" और लपका अपने डिब्बे की तरफ़ टोपी लेने। घबराहट में न जाने किस डिब्बे में घुसा। वहां से निकला और अब इधर दौड़ता हूँ और उधर मगर जल्दी में अपना डिब्बा नहीं मिलता। रेल ने एक और सीटी दी और अब मुझे खयाल आया कि यह है अपना डिब्बा। रेल चली और मैं लपका। मालूम हुआ कि गलती हुई और डिब्बा पीछे है मगर अब गाड़ी ने रफ़्तार पकड़ ली। मैं खड़ा रह गया। अपना डिब्बा सामने से गुजरा और मैंने देखा कि वह सामने मेरी टोपी रखी है। बे-इख्तियारी की हालत में जैसे टोपी उठाने की कोशिश की मगर "घड़ घड़ घड़"—गाड़ी गई।

: ८ :

ख़ैर मैंने दिल में कहा टोपी गई तो क्या हुआ। अच्छा हुआ ख़ानम ने नई टोपी नहीं दी थी। अब इत्मीनान से आब चटे वेटिंग रूम में लड़ेंगे और फिर सोएँगे। सुबह की गाड़ी से जाना होगा। चुनांचे मैं वेटिंग रूम के पास आया और दरवाज़ों को ज़ोर से पीटा। वह क़ुली आया और कहने लगा—"अन्दर से बन्द है और वेटिंग रूम का चपरासी पिछले दरवाज़े में ताला डालता है। आपको खुलवाना है तो स्टेशन मास्टर से कहिये।"

"हैं !" मैंने हैरत से कहा, "तो इसके अन्दर कोई नहीं है......कोई औरत.........।"

"एक बेगम साहिबा आई थीं मगर वह तो गईं।"

"अरे !" मैंने उछल कर कहा, "किधर ?"

"उधर।" चुन्नी ने रेल की पटरी की तरफ़ उंगली उठा दी।

मैंने बेहद परेशान होकर एक गहरी साँस ली। जी में आया कि इन रेलों के नीचे मैं मर पड़ूँ। अब मुझे पता चला कि पुराने ज़माने की बैल गाड़ियाँ [illegible] बड़ा-बड़ा काम देते थे। काश तस्वीरें थीं मगर ऐसी तक़दीर न होती। मालूम की यह हरकत कभी माफ़ नहीं की जा सकती। उसको हर्गिज़ नहीं जाना चाहिये था। आख़िर क्यों चल दी? कैसे चल दी? उसे हुआ क्या था कम देने का? [illegible] देखा जाएगा। इसी तरह हम [illegible] रहा मगर बहुत जल्दी मालूम हुआ कि [illegible] का असर है और मौसम [illegible] है और दुनिया में हैरानी और परेशानी के अलावा एक और चीज़ भी है और उसका नाम [illegible] और है मगर बहुत जल्द जाड़े ने कहा कि न तो [illegible] है कोई चीज़ और न मौत — अगर है तो मैं हूँ। और यहीं मुझे मानना पड़ा लेकिन चूँकि फ़िज़ूल मुझे ज़ोर पर कोई मज़मून नहीं लिखना इसलिए इसका ज़िक्र छोड़ता हूँ। सिर्फ़ यह सोचिये कि अगर कुलियों के [illegible] में बैठ कर रात काटना मुमकिन नहीं था तो यह भी मुमकिन नहीं था कि बगैर कुछ ओढ़े बिछाए सो रहूँ या एक आदमी को ऐसी [illegible] पैदा करूँ जो मुझे [illegible] रहा था और समझ रहा था। बस यूँ समझिये कि मालूम होता था कि अब सुबह नहीं होगी और यूँ ही ठिठुर कर मर जाएँगे। पैसा पास नहीं, हाँ सिर्फ़ एक छोड़ा सा [illegible] थे।

ज्यों त्यों कर के सुबह हुई। गाड़ी भी आई और बैठ भी गए और अपनी मंज़िल पर यह दुविधा लिये पहुँच भी गए कि रात के जागे हुए और ठिठुरे-ठिठुराए कैसा मुँह लेकर पहुँचे और [illegible] मगर वहाँ पहुँचे और मालूम जो किया तो जवाब वो ही नदारद।

[illegible] मेरे अल्लाह! अब मैं क्या करूँ? वह किधर गई आख़िर? क्या हो गई? हर जगह और तलाश कराया मगर कहीं भी पता नहीं। आख़िर तार दिया ससुराल और वहाँ से जवाब आया कि पहुँच गई है — मैं तो यहीं आ रही थी। अब सिवाय इसके और क्या चारा था कि वहीं से रुपया क़र्ज़ लेकर ससुराल पहुँचें। पहुँचे वहीं किया।

शाम के कोई पाँच बजे होंगे जब मैं ससुराल पहुँचा । घर में दाख़िल हुआ तो क्या देखता हूँ कि ससुर नमाज़ पढ़ने के बाद दुआ माँग रहे हैं । दो-तीन छोटे-छोटे नालिकुमा लड़के एक चारपाई पर बैठे हुए थे । मुझे देखते ही उनमें से एक उछल पड़ा और किस तरह उस नालायक ने कहा—"भाई मियाँ खो गए··· ·· मिल गए ······।" मैं जल-भुनकर कबाब हो गया । वह अन्दर दौड़ा, बाकी दोनों उसके पीछे । अन्दर पहुँच कर उसने गला फाड़ कर नारा लगाया, "तुम तो कहती थीं भाई मियाँ खो गये·········" इसके आगे सुनाई नहीं दिया ।

मैंने ससुर साहब को सलाम किया । उन्होंने इशारे से रोका और जल्दी से दुआ ख़त्म करके कहा :

"अरे मियाँ ! कहाँ खो गए थे ?" (मुस्कराते हुए) ।

मैं भला क्या कहता । जी में तो यही आया कि डिक्शनरी कहीं मिलती तो बताता कि खो जाना और चीज़ है और रह जाना और चीज है और फिर मैं तो रह भी नहीं गया बल्कि आपकी लड़की की वजह से यह सब हुआ । मैं क्या जवाब देता । संक्षेप में तमाम बातें इस तरह समझाईं कि सारा इलज़ाम ख़ानम पर आए मगर वह जो किसी ने कहा है कि अपने और पराये में फ़र्क़ होता है सच कहा है । लगे हज़रत वही क़िस्सा बयान करने यानी गिनाने लगे वे तमाम चीजें जो सफ़र में मुझ से खो गई थीं और फिर बाद में टीप का बन्द :

"तुम्हारे साथ तो औरतों का सफ़र करना ख़तरे से ख़ाली नहीं ।"

उन से निपट कर घर में पहुँचा तो ख़ानम की एक परदादी क़िस्म की बहरी बूढ़ी औरत को सास साहिबा चीख़-चीख़ कर उखड़े-उखड़े जुमलों में मेरे मिल जाने की ख़ुशख़बरी सुना रही थीं :

"आ गया ······ हाँ·····आ गया········ ······अभी········"

"मिल गया ?" बड़ी बी बोलीं ।

"हाँ मिल गया।" मेरी सास ने कहा, "मिल गया··· ···यह खड़ा है, सलाम करता है।"

"जीता रहे, हज़ार बरस की उम्र हो··· ···इसके दुश्मन खो जाएँ।" वगैरह-वगैरह।

बड़ी बी दुआएँ दे रही थीं कि घर की हड़बोंग सुनकर पड़ोसिन ने आवाज़ दी। आपस में बातचीत करने के लिए दीवार में एक छेद कर लिया गया था। वहाँ एक और बुढ़िया खड़ी पड़ोसिन को कुछ बताने लगी। पूरी बात मैंने नहीं सुनी मगर इतना ज़रूर सुना :

"उसके दुश्मन········ थे··· ···मिल··· हाँ··· ···अभी··· ··· ···"

अब मेरे धीरज की हद हो गई थी। जी चाहा कि फट पड़ूँ। एक सिरे से सबकी ख़बर ले डालूँ। आख़िर मैंने दबी ज़बान से कहा :

"कौन खो गया था? कोई बच्चा हूँ जो मैं खो जाता। ख्वाहमख्वाह आप लोग·········" मैं एक दम से चुप हो गया। सामने अपने कमरे से ख़ानम चुप रहने का इशारा कर रही थी। मैं उधर देख ही रहा था कि एक और दादी ने पीछे से अपनी दिलचस्प आवाज़ में कहा :

"मेरी चमेली की कली कहाँ खो गई थी?"

उन्हें देखकर मुझे वैसे ही हँसी आती है। हँस कर मैंने कहा, "दादी सलाम।" इसके जवाब में उन्होंने दुआ देकर मेरी बलाएँ लीं यह कहते हुए :

"क्या बताऊँ बेटे। जब से मैंने सुना कि खो गया दिल उलटा आता था।"

"आप भी कैसी बातें करती हैं?" मैंने कुछ बुरा मानते हुए कहा, "कोई बच्चा हूँ जो मैं खो जाता आख़िर कोई बात भी है जो सब कह रहे हैं कि मैं खो गया था।"

"फिर और कैसे खो जाते हैं?" दादी तेज़ होकर बोलीं, "ख़ुद तेरी घरवाली कह रही है कि तू खो गया···और फिर मियाँ, अल्लाह रक्खे तुम हो भी तो बिलकुल भोले अहमक! दुनिया-जहान की चीज़ें खोते फिरते

हो। आगे दिन सुनने में आता है कि यह खो गया वह खो गया, फिर कल सुना कि लो तुम खुद कहीं खो गए।"

मैंने हँस-हँसकर और कुछ बिगड़ कर बताया कि न तो मैं खो सकता हूँ और न खो गया था और आयंदा यह लफ़्ज़ मेरे लिए इस्तेमाल न किया जाए। मगर यहाँ का बाबा आदम ही निराला है। जब मैंने कहा कि मैं खोया नहीं बल्कि रह गया था तो वह बोली, "बेटा रह तो हमारी बच्ची गई थी। तुम तो आगे जाकर न मालूम कहाँ खो गए थे।"

क़िस्सा मुख़्तसर, थोड़ी देर उन से और बहस की और जैसे बना उन से जान छुड़ाई।

इसके बाद खानम से हुज्जत और बहस हुई। उसने मुझे इलज़ाम दिया और मैंने उसे। वह इटावे पर उतरी और सेकंड क्लास में बैठी और जब देखा कि मैं ग़ायब हूँ और रेल चल देगी तो उतर पड़ी। उधर मैं दूसरी तरफ़ से दौड़ कर बैठ गया। इरादा तो लड़ने का बहुत कुछ था मगर आयंदा पर उठा रखा। मैंने उस से कहा कि तू खो गई थी और उसने कहा कि तुम खो गए थे। अब फ़ैसला आप लोगों के हाथ में है कि कौन अहमक़ है, बल्कि नहीं अहमक़ तो दोनों हैं—सवाल यह है कि ज़्यादा अहमक़ कौन है और खो कौन गया था—मैं या वह?

कामरेड शेख़ चिल्ली

कन्हैया लाल कपूर

एक रोज कब्रिस्तान से मेरा गुज़र हुआ। एक क़ब्र बहुत पसंद आई। उसके पास गया और खड़ा होकर क़ब्र के सबात (स्थायित्व) और दुनिया की बे-सबाती (अस्थायित्व) पर गौर करने लगा। एकाएक नज़र कब्र की तख़्ती पर पड़ी, लिखा था—'शेख़ चिल्ली का मज़ार।" आँखों में आँसू भर आए और हाथ बेइख़्तियार फ़ातिहा पढ़ने को उठे। आह शेख़चिल्ली! हिन्दुस्तान का सबसे बड़ा मुफ़क्किर (विचारक)—तू हिन्दुस्तान से क्या गया ख़याली पुलाव पकाने का सिलसिला ही हमेशा के लिए ख़त्म हो गया। पुलाव पहले ही हिन्दुस्तान में कम मिलता था मगर अब ख़याली पुलाव से भी गए।

अचानक कब्र से आवाज़ आई, "राही! तुम ग़लती कर रहे हो। शेख़ चिल्ली अभी ज़िन्दा है और हर जगह मौजूद है।"

मैंने हैरान होकर कहा, 'शेख़ चिल्ली यह तुम क्या कह रहे हो। ज़ालिम! कब्र में लेटकर भी ख़याली पुलाव पकाने से बाज़ नहीं आते।" शेख़ चिल्ली ने जवाब दिया, "शेख़चिल्ली हर आदमी के दिमाग़ में रहता है। मगर तुम अपने दिल और दिमाग़ पर नज़र डालो तो ज़रूर मुझे दिल [illegible] किसी कोने में छुपा हुआ पाओगे।"

मैंने मुस्करा कर कहा, "शेख साहब आप तो ख्वाबों में बातें करने लगे। मैं तो आपको इस दुनिया में देखना चाहता हूँ। मैं आपको अपने दिल के कोने में नहीं बल्कि इन्सान के रूप में देखना चाहता हूँ।"

शेख चिल्ली ने चिल्लाकर कहा, 'यह कोई मुश्किल बात नहीं। क्या तुम आज शाम को माल रोड के क़हवाखाने के बाहर मिल सकते हो ?"

मैंने जवाब दिया, "मुझे आपसे मिलकर बहुत खुशी होगी।"

शेख चिल्ली से रुख़सत होकर मैं घर की तरफ़ रवाना हुआ। रास्ते में शेख चिल्ली के इस फ़िक़रे पर गौर करता रहा कि शेख चिल्ली हर शख्स के दिमाग में रहता है। अचानक मुझे अपना एक शायर दोस्त याद आया जो अक्सर अपने मुस्तक़बिल के बारे में इस तरह के हवाई क़िले बनाता है कि मेरी शायरी आज से हजार बरस बाद की शायरी है, इसलिए इसे हिन्दुस्तान में सिर्फ़ दो-तीन आदमी समझ सकते हैं और जब मेरा बातस्वीर (सचित्र) दीवान आर्ट पेपर पर छपेगा तो लोग 'बाले-जिब्रील" और "मुरक्क़-ए-चुग़ताई" को भूल जाएंगे। और एकाएक मुझे उस फ़लसफ़ी का ख़याल आया जो मुझे देहली में मिला था और जिसने कहा था कि मैंने अपनी किताब में आइंस्टाइन के आपेक्षिकता-सिद्धान्त का इस ख़ूबी से खंडन किया है कि नोबल पराइज़ कमेटी के मेम्बर हैरान रह जाएंगे। इसी क़िस्म का मेरा एक और दोस्त था। पंडित शर्मा। उसका दावा था कि उसकी 'शर्मांजलि' के मुक़ाबले में टैगोर की गीतांजलि का रंग फीका पड़ जाएगा। और ख़ुद मैंने कितनी दफ़ा अजीबोग़रीब ख़याली पुलाव पकाए हैं। कभी कुरसी पर बैठे-बैठे सारे यूरोप की सैर कर डाली तो कभी घास पर लेटे-लेटे आस्मान के तारे तोड़ लाया। शेख चिल्ली सच कहता था—हम सब शेख चिल्ली हैं। अचानक मैंने अपने-आपको माल रोड के क़हवाखाने के दरवाज़े पर खड़ा पाया। देखा कि एक लम्बा नौजवान अपने क़द से चार गुना लम्बा झंडा उठाए, मैला गाढ़े का लिबास पहने दरवाज़े के पास खड़ा है। चेहरा धूप से झुलसा हुआ, रूखे-सूखे बाल माथे पर बिखरे हुए, आँखें लाल लाल और डरावनी, गाल पिचके हुए। मुझे

देखते ही मुस्कराया जैसे मुझ से जान-पहचान हो। मैंने ज्यों ही उसके चेहरे की तरफ देखा उसने उंगली से अपनी किश्तीनुमा टोपी की तरफ इशारा किया जिस पर लाल रोशनाई से लिखा हुआ था—"कामरेड शैख चिल्ली।" दूसरे क्षण में वह मुझसे गले मिल रहा था।

"आइये कहवा पीजिए।" उसने मुझे दावत देते हुए कहा।

हम दोनों कहवाखाने में दाखिल हुए।

'तो आपकी ख्वाहिश पूरी हो गई।" उसने बैठते हुए कहा।

"यह क्या मजाक है ?" मैंने रुखाई से कहा, "यह क्या स्वांग बना रखा है आपने ?"

"घबराइये नहीं।" उसने कहकहा लगाते हुए कहा, 'शैख चिल्ली को साम्यवादी के भेस में देखिये।"

"अच्छा तो अब यह सौदा समाया है। क्या इरादे हैं अबकी बार। किस्से-कहानियों में तो मशहूर है कि आपकी सबसे बड़ी ख्वाहिश वजीर की लड़की से शादी करना थी। अब क्या खयाल है ?"

"वजीर की लड़की से शादी करने का खयाल बूर्ज्वा खयाल है। अब मैं इस किस्म के फिजूल खयालों से सख्त नफरत करता हूँ।"

'बूर्ज्वा ! अजी शैख साहब यह बूर्ज्वा क्या बला है ?"

"अजीब अहमक हो तुम !" शैख चिल्ली ने बिगड़कर कहा, "इतना भी मालूम नहीं। अब तुम पूछोगे कि प्रोलतारी का क्या मतलब है।"

"सच तो यह है कि मुझे प्रोलतारी के माने भी नहीं आते।"

"तब तुम निरे गावदी हो। देखो दुनिया की हर चीज या तो बूर्ज्वा है या प्रोलतारी।"

"मगर इन दोनों में क्या फर्क है ?"

"फर्क ! फर्क यह है कि जो चीज बूर्ज्वा नहीं है वह प्रोलतारी है और जो प्रोलतारी नहीं वह बूर्ज्वा है।"

"वाह क्या व्या[illegible] [illegible]है आपने ?"

"भाई यह तो सीधी-सी बात है। दुनिया की हर नफ़ीस, मुलायम और साफ़ चीज बूर्ज्वा है और हर गंदी, सख्त और बदसूरत चीज प्रोलतारी है।"

"मसलन।"

"मसलन यह है कि फूल बूर्ज्वा है, कांटा प्रोलतारी। खांड बूर्ज्वा है गुड़ प्रोलतारी। रेशम बूर्ज्वा है गाढ़ा प्रोलतारी।"

"अच्छा तो क़हवा के बारे में क्या ख्याल है?" मैंने मेज पर रखे हुए क़हवे के प्याले की तरफ इशारा करते हुए पूछा।

'क़हवा बिलकुल प्रोलतारी है। देखिये इस तरह है कि शराब बूर्ज्वा है और चाय प्रोलतारी। चाय से ज्यादा क़हवा प्रोलतारी है क्योंकि सस्ता है।"

"और क़हवे से ज्यादा प्रोलतारी म्युनिसिपल नल का पानी क्योंकि बिलकुल मुफ्त मिलता है।"

"वल्लाह तुम खूब समझे!" शेख़ चिल्ली ने मेरी पीठ ठोंकते हुए कहा।

"खैर यह तो हुआ। अब शेख़ साहब यह फ़रमाइये कि आपके मनसूबे क्या हैं?"

"मेरे मनसूबे!" शेख़ ने फ़ख्र से सिर उठाते हुए कहा, 'मेरे मनसूबे हैं हिन्दुस्तान से बूर्ज्वा तहज़ीब, बूर्ज्वा मनोवृत्ति, बूर्ज्वा संस्कृति को नष्ट करना।"

"वह किस तरह? क़हवे के प्याले पी-पी कर?"

'अजी नहीं।" शेख़ ने जरा बिगड़कर कहा, "खून के दरिया बहा-बहा कर।"

'खून के दरिया?"

"जी हां खून के दरिया। अभी कुछ दिनों के बाद यहां खून के दरिया बहेंगे।"

'मेरे अल्लाह!" मैंने अपना सिर पकड़ते हुए कहा, "तो आप लोगों का खून करेंगे! क्या मैं पुलिस को खबर कर दूं।"

"हां हां! हजारों का खून, लाखों का खून और अगर जरूरत पड़ी तो करोड़ों का खून।"

"इससे फायदा ?"

"इससे फायदा यह है कि इस कमबख्त जमीन के गुनाह जिसे तुम हिन्दुस्तान के नाम से पुकारते हो तब तक नहीं धुल सकते जब तक यहाँ खून की नदियाँ न बहाई जाएँ ।"

"किस-किसका खून करेंगे आप ?"

"अपने सिवा तकरीबन सबका मगर सबसे पहले···"

"हाँ हाँ सबसे पहले ?" मैंने घबरा कर पूछा ।

"सबसे पहले बूढ़े लीडरों का ।"

"इसके बाद ?"

"बुजदिलों और गद्दारों का ।"

"इसके बाद ?"

"मुल्लाओं और पंडितों का ।"

"मगर शेख साहब इन बेचारे बूढ़े लीडरों ने आपका क्या बिगाड़ा है ?"

"ये ही तो आजादी की राह में सबसे बड़ी रुकावट है । ये सठियाए हुए खूसट, ये महात्मा, ये पंडित, ये मौलाना, ये बुजदिल लीडर जिन्हें खून से डर लगता है और जो खून के बजाय हिन्दुस्तान में शहद और दूध की नहरें बहाना चाहते हैं । ये सब कठपुतलियाँ हैं जो सरमायादारों के इशारों पर नाच रही हैं ।"

"तो आपका मकसद इनसे लीडरशिप छीनना है ।"

"हाँ, मगर जाती गरज के लिए नहीं बल्कि कौमी फायदे के लिए ।"

"मगर क्या उनकी लीडरशिप और आपकी लीडरशिप में फर्क होगा ?"

"जमीन और आस्मान का फर्क । देखिये सबसे बड़ा फर्क तो यही है कि वे ऊपर से नीचे की तरफ इन्कलाब लाना चाहते हैं और हम नीचे से ऊपर की तरफ इन्कलाब ले जाना चाहते हैं ।"

"इस ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर का मतलब ?"

"यार तुम भी गावदी हो । इतना भी नहीं जानते कि नीचे जनता है और ऊपर से मतलब सरमायादार ।"

"जनता यानी ?"

"जनता यानी अवाम यानी आम लोग यानी हम तुम ।"

"मगर मीर साहब जनता तो अभी अनपढ़ है, जाहिल है, वहमों में फँसी हुई है, डरपोक है ।"

"यह सही है मगर कामरेड लेनिन कहता है कि जनता हमेशा ऐसी होती है । खैर कोई बात नहीं । अगर इधर जनता कमजोर है तो उधर हमारी साम्यवादी पार्टी मजबूत है । पार्टी की ताकत हर रोज बढ़ रही है और अब तो उसके मिम्बरों में आगे से कुछ कम औरतें भी हैं । यह उसकी मज़बूती का एक और सबूत है । और हाँ तुम सुनकर खुश होंगे कि पार्टी का अपना अख़बार भी है जो तीन सौ के क़रीब छपने लगा है और अगर पार्टी के मिम्बर इसी तरह चौराहों पर खड़े होकर उसे बेचते रहे तो शायद चार सौ भी छपने लगे ।"

"मगर आप जनता के लिए क्या कर रहे हैं ?"

"अजी साहब यह सब कुछ जनता के लिए ही तो है । देखिए हम साल में एक बार देहात में कैम्प लगाते हैं । जी कड़ा करके सरसों का साग और मक्की की रोटी भी खाते हैं । किसानों की बोली समझने और उन्हें अपने ख़यालात समझाने की कोशिश भी करते हैं और जब कोशिश के बावजूद एक दूसरे को नहीं समझ सकते तो वापस आ जाते हैं । इससे ज्यादा हम क्या कर सकते हैं ।"

"अच्छा तो आप के ख़याल में इन्क़लाब आप की पार्टी लाएगी या जनता ?"

"दोनों, देखिये साम्यवादी पार्टी दिन-ब-दिन जोर पकड़ रही है । आज इसकी तादाद दो चार सौ आदमियों से कम नहीं मगर जनवरी, १६४८ में उसकी तादाद एक हजार हो जाएगी और मार्च में पाँच हजार और अगस्त में बीस हजार यहाँ तक कि दिसम्बर, १६६० में उसकी तादाद तीन करोड़ तक जा पहुँचेगी तीन करोड़, जरा खयाल करो तीन करोड़-दुनिया की सबसे बड़ी पोलि-

किसान पार्टी। आहिस्ता-आहिस्ता यह पार्टी म्यूनिसिपल इलेक्शन लड़ना शुरू करेगी। इसके बाद एसेम्बली के लिए उम्मीदवार खड़े करेगी। कौंसिलों पर कब्ज़ा करते ही यह सुर्ख़ फ़ौज तैयार करने का काम अपने हाथ में लेगी। आह कामरेड! वह दिन कितना मुबारक होगा जब हमारी पार्टी एक करोड़ जवानों की फ़ौज तैयार करके सरमायादारों के क़िले पर धावा बोल देगी।"

"मगर इस फ़ौज में आपकी क्या हैसियत होगी?"

"मेरी हैसियत" शेख़ ने गुरूर से कहा, "यक़ीनन मेरी हैसियत सिपह-सालार की होगी। मैं हिन्दुस्तान का लेनिन बनूँगा। मेरे इशारा से हमारे पर सारे पूँजीपतियों को मौत के घाट उतार दिया जाएगा, हज़ारों नवाबों को गोली का निशाना बना दिया जाएगा, लाखों जागीरदारों को फाँसी के तख़्ते पर लटका दिया जाएगा। मैं हुक्म दूँगा—फ़ायर! और करोड़ों ग़द्दारों के सिर हवा में उड़ते नज़र आएँगे।"

"इसके बाद क्या होगा?"

"इसके बाद इन्क़लाब—पुराने निज़ाम (व्यवस्था) के परख़चे उड़ेंगे, सुर्ख़ झंडा लहराएगा, सुर्ख़ आँधी चलेगी। कोई जागीरदार होगा न नवाब, राय बहादुर न ख़ाँ साहब, बड़ी तोंदों वाले सेठ न मोटी गर्दन वाले पूँजीपति, मस्जिद न मन्दिर, मुल्ला न पंडित। बस जनता होगी जनता। सब बराबर होंगे। हर आदमी काम करे, हर आदमी आराम करे और हर आदमी को खाना मिले।"

"और क्षमा कीजिये शेख़ साहब," मैंने हिम्मत करके पूछा, "अगर उस वक़्त कोई नवाब या पूँजीपति आपके पास जानबख़्शी की दरख़्वास्त ले कर आए तो आप उसके साथ क्या बरताव करेंगे?"

"मैं उस साले को इस ज़ोर से लात मारूँगा कि उसकी बत्तीसी बाहर आ पड़ेगी।" और यह कहते ही शेख़ साहब ने ज़ोर से दुलत्ती चलाई तो सामने रखी हुई मेज़ और उस पर पड़े हुए क़हवे के प्याले दस गज़ की दूरी पर जा रहे। गर्म-गर्म क़हवे के छींटे उड़कर आस-पास शरीफ़ क़हवा पीने वालों के

मुँह और कपड़ों पर जो गिरे तो क़हवाख़ाने में हुल्लड़ सा मच गया। किसी ने कहा सौदाई है, किसी ने कहा दीवाना है। तमाम लोग हमारी तरफ़ भागते दिखाई दिये। शेख़चिल्ली ने आव देखा न ताव झट कोने में से अपना झंडा उठाया, चौकड़ी भरी और हवा हो गए। अब जनता उनका पीछा कर रही थी और मैं जनता से चिल्ला-चिल्ला कर कह रहा था, "अरे लौट आओ। क्यों मुफ़्त में पाँव थकाते हो। यह तो कामरेड शेख़चिल्ली थे, कामरेड शेख़ चिल्ली!"

चचा छक्कन ने तस्वीर टांगी

●

इम्तियाज़ अली ताज

चचा छक्कन कभी-कभार कोई काम अपने ज़िम्मे क्या लेते हैं घर-भर को तिगनी का नाच नचा देते हैं। आ बे लौंडे, जा बे लौंडे। यह कीजियो वह दीजियो। घर बाज़ार एक हो जाता है। दूर क्यों जाओ, परसों परले रोज़ का ज़िक्र है दुकान से तस्वीर का चौखटा लगकर आया। उस वक्त तो दीवानखाने में रख दी गई। कल शाम कहीं चची की नज़र उस पर पड़ी। बोलीं "छुट्टन के अब्बा! तस्वीर कब से रखी हुई है। ख़ैर से बच्चों का घर ठहरा, कहीं टूट-फूट गई तो बैठे-बिठाए रुपये-दो-रुपये का धक्का लग जाएगा। कौन टांगे इसको ?"

"टांगता और कौन ! मैं ख़ुद टांगूंगा। कौनसा ऐसा पहाड़ खोदना है। रहने दो मैं अभी सब कुछ ख़ुद ही किये लेता हूँ।"

कहने के साथ ही शेरवानी उतार चचा तस्वीर टांगने को तैयार हो गए। इमामी से कहा, "बीवी से दो आने पैसे लेकर मेखें ले आ।"

इधर वह दरवाज़े से निकला उधर मूदे से कहा, "मूदे ! मूदे ! जाना इमामी के पीछे। कहियो तीन इंच की हों मेखें। भाग कर जा।"

लीजिए तस्वीर टांगने के काम की बुनियाद पड़ गई और अब आई घर-भर की शामत।

नन्हे को पुकारा, "ओ नन्हे ! जाना जरा मेरा हथौड़ा ले आना। बन्नो ! जाओ अपने बस्ते में से स्केल निकाल लाओ और सीढ़ी की जरूरत भी तो होगी हमको। अरे भाई लल्लू ! जरा तुम जाकर किसी से कह देते सीढ़ी यहां आकर लगा दे। और देखना वह लकड़ी के तख्ते वाली कुरसी भी लेते आते तो खूब होता। छुट्टन बेटे ! चाय पी ली तुमने ? जरा जाना तो अपने पड़ोसी मीर बाकर अली के घर। कहना अब्बा ने सलाम कहा है और पूछा है आपकी टांग अब कैसी है। और कहियो वह जो है ना आपके पास—क्या नाम है उसका ? ए लो भूल गया पलांल था कि टलांल। अल्लाह जाने क्या था। और वह कुछ ही था—तो यूँ कह दीजियो कि वह जो आपके पास आला है ना जिससे सीध मालूम होती है, वह जरा दे दीजिए। तस्वीर टांगनी है। जाना मेरे बेटे ! पर देखना सलाम जरूर करना और टांग के बारे में पूछना न भूल जाना। अच्छा ? यह तुम कहां चल दिये लल्लू ? कहा जो है जरा यहीं ठहरे रहो। सीढ़ी पर रोशनी कौन दिखाएगा हमको ? आ गया इमामी ? ले आया मेखें ? मूदा मिल गया था ना ? तीन-तीन इंच ही की हैं ना ? बस बहुत ठीक हैं। लो सुतली मंगाने का तो खयाल ही न रहा। अब क्या करूँ ? जाना मेरा भाई जल्दी से। हवा की तरह से जा और देखियो बस गज सवा गज हो सुतली। न बहुत मोटी हो न पतली। कह देना तस्वीर टांगने को चाहिये। ले आया ? ओ बद्दू ! बद्दू कहां गया ? बद्दू मियां ! इसी वक्त सबको अपने-अपने काम की सूझी है। यूँ नहीं कि आकर जरा हाथ बटाएँ। यहां आओ। तुम कुरसी पर चढ़ कर मुझे तस्वीर पकड़ना।"

लीजिए साहब खुदा-खुदा करके तस्वीर टांगने का वक्त आया मगर होने वाली बात होकर रहती है। चचा उसे उठाकर जरा वजन कर रहे थे कि हाथ से छूट गई। गिर कर शीशा चूर-चूर हो गया। है-है कहकर सब एक

दूसरे का मुँह तकने लगे। चचा ने कुछ शर्मिन्दा होकर शीशे के टुकड़ों का गुथाबना शुरू कर दिया। वक़्त की बात, उँगली में शीशा चुभ गया। ख़ून की धार बंध गई। तस्वीर को भूल कर अपना रूमाल तलाश करने लगे। रूमाल कहाँ से मिले? रूमाल था शेरवानी की जेब में। शेरवानी उतार कर न जाने कहाँ रखी थी। अब जनाब घर-भर ने तस्वीर टाँगने का सामान तो ताक पर रखा और शेरवानी की ढुँढिया पड़ गई। चचा मियाँ कमरे में नाचते फिर रहे हैं। कभी इससे टक्कर खाते हैं कभी उससे।

"सारे घर में से किसी को इतनी तौफ़ीक़ नहीं कि मेरी शेरवानी ढूँढ निकाले। उम्र-भर ऐसे निकम्मों से पाला न पड़ा था। और क्या झूठ कहता हूँ कुछ? छः-छः आदमी हैं और एक शेरवानी नहीं ढूँढ सकते जो अभी पाँच मिनट भी तो नहीं हुए मैंने उतार कर रखी है। भई बड़े………"

इतने में आप किसी जगह से बैठे बैठे उठते हैं और देखते हैं कि शेरवानी पर ही बैठे हुए थे। अब पुकार-पुकार कर कह रहे हैं "अरे भई! रहने देना, मिल गई शेरवानी। ढूँढ ली हमने। तुमको तो आँखों के सामने बैल भी खड़ा हो तो नज़र नहीं आता।"

आधे घंटे तक उँगली बंधती-बंधाती रही। नया शीशा मँगवा कर चौखटे में जड़ा और तमाम क़िस्से तय करने पर दो घंटे बाद फिर तस्वीर टाँगने की मुहिम सामने आई। औज़ार आए, सीढ़ी-चौकी आई, चिराग़ लाया गया। चचा जान सीढ़ी पर चढ़ रहे हैं और घर-भर (जिसमें मामा और कहारी भी शामिल हैं) आधे दायरे की सूरत में इमदाद देने को कील काँटे से लैस खड़ा है। दो आदमियों ने सीढ़ी पकड़ी तो चचा जान ने उस पर क़दम रखा। ऊपर पहुँचे। एक ने कुरसी पर चढ़ कर मेखें बढ़ाईं– एक ले ली। दूसरे ने हथौड़ा ऊपर पहुँचाया। सँभाला ही था कि मेख हाथ से छूटकर नीचे गिर पड़ी। खिसियानी आवाज़ में बोले—"ए लो! अब कर गिर पड़ी। देखना कहाँ गई?"

अब सबके सब घुटनों के बल टटोल-टटोल कर मेख तलाश कर रहे हैं। और चचा मियाँ सीढ़ी पर खड़े लगातार बड़बड़ा रहे हैं, "मिली? अरे कमबख्तो ढूँढी? अब तक तो मैं सौ बार तलाश कर लेता। अब मैं रात भर सीढ़ी पर खड़ा-खड़ा सूखा करूँगा। नहीं मिलती तो दूसरी ही दे दो अंधो।"

यह सुनकर सब की जान में जान आती है तो पहली मेख ही मिल जाती है। अब मेख चचा जान के हाथ में पहुँचते हैं तो मालूम होता है इस अर्से में हथौड़ा गायब हो चुका है।

"यह हथौड़ा कहाँ चला गया? कहाँ रखा था मैंने? लाहौल वला कूवत उल्लू की तरह आँखें फाड़े मेरा मुँह क्या तक रहे हो? सात आदमी और किसी को मालूम नहीं हथौड़ा मैंने कहाँ रख दिया?"

बड़ी मुसीबतों से हथौड़े का पता लगा और मेख गड़ने की नौबत आई। अब आप यह भूल बैठे हैं कि नापने के बाद मेख गाड़ने को दीवार पर निशान किस जगह किया था। सब बारी-बारी कुरसी पर चढ़कर कोशिश कर रहे हैं कि शायद निशान नज़र आ जाए। हर एक को अलग अलग निशान दिखाई देता है। चचा सब को बारी-बारी उल्लू-गधा कह कह कर कुरसी से उतर जाने का हुक्म दे रहे हैं। आखिर फिर रूल लिया और कोने से तस्वीर टांगने की जगह को दोबारा नापना शुरू किया। सामने की तस्वीर कोने से पैंतीस इंच की दूरी पर लगी हुई थी। 'बारह और बारह कितने इंच और?"

बच्चों को जबानी हिसाब का सवाल मिला। ऊँची आवाज़ में हल करना शुरू किया और जवाब निकाला तो किसी का कुछ था और किसी का कुछ। एक ने दूसरे को ग़लत बताया। इसी तू-तू मैं-मैं में सब भूल बैठे कि असली सवाल क्या था। नये सिरे से नाप लेने की ज़रूरत पड़ गई।

अब चचा रूल से नहीं नापते, सुतली से नापने का इरादा रखते हैं। सीढ़ी पर पैंतालीस डिग्री का कोण बना कर सुतली का सिरा कोने तक पहुँचाने की कोशिश में हैं कि सुतली हाथ से छूट जाती है। आप लपक कर

उसे पकड़ना चाहते हैं कि इसी कोशिश में ज़मीन पर आ रहते हैं। कोने में सितार रखा था। उस के तमाम तार चचा जान के बोझ से एकाएक झन-झना कर टुकड़े टुकड़े हो जाते हैं।

अब चचा जान की ज़बान से जो मंझे हुए लफ़्ज़ निकलते हैं सुनने के काबिल होते हैं मगर चची रोक देती हैं और कहती हैं :

'अपनी उम्र का नहीं तो इन बच्चों ही का ख़याल करो।"

बहुत दुश्वारी के बाद चचा जान नये सिरे से मेख़ गाड़ने की जगह तय करते हैं। बाएँ हाथ से उस जगह मेख़ रखते हैं और दाहिने हाथ से हथौड़ा सँभालते हैं। पहली चोट जो पड़ती है तो बाँयें हाथ के अंगूठे पर। आप "सी" करके हथौड़ा छोड़ देते हैं। वह नीचे आ कर गिरता है किसी के पाँव पर। "हाय हाय" और "मार डाला" शुरू हो जाती है।

चची जल-भुन कर कहती हैं—'यूँ मेख़ गाड़ना हुआ करे तो मुझे आठ रोज़ पहले ख़बर दे दिया कीजिए, मैं बच्चों को लेकर मैके चली जाया करूँ। और नहीं तो ...."

चचा शर्मिंदा होकर जवाब देते हैं—"यह औरत ज़रा सी बात का बतंगड़ बना देती है। यानी हुआ क्या जिस पर ये ताने दिये जा रहे हैं। भला साहब, अब हम किसी काम में दख़ल न दिया करेंगे।"

अब नये सिरे से कोशिश शुरू हुई। मेख़ पर दूसरी चोट जो पड़ी तो उस जगह का पलस्तर नरम था, पूरी की पूरी मेख़ और आधा हथौड़ा दीवार में और चचा अचानक मेख़ गड़ जाने से दीवार से टकराए। मगर नाक ग़ैरत वाली होती तो पिचक कर रह जाती।

इसके बाद नये सिरे से रूल और रस्सी तलाश की गई और मेख़ गाड़ने की नई जगह मुक़र्रर हुई और कोई आधी रात का वक़्त होगा कि ख़ुदा-ख़ुदा कर के तस्वीर टंगी, वह भी कैसी ? टेढ़ी-बांकी और इतनी झुकी हुई कि जैसे अब सिर पर आई। चारों तरफ़ गज़-गज़ भर दीवार की यह हालत गोया चाँदमारी

होती रही है। नन्ना के सिवा बाकी सब मकान में पूरे नींद में झूम रहे हैं। अब आखिरी सीढ़ी पर से धम से जो उतरते हैं तो कहारी गरीब के पांव पर पांव। गरीब तड़प ही तो उठी। नन्ना उसकी चीख सुनकर जरा घबराए तो जरूर मगर पल भर में दाढ़ी पर हाथ फेर कर बोले, "इतनी सी बात थी। लग भी गई। लोग इस के लिए मिस्तरी बुलवाया करते हैं।"

सवेरे जो कल आंख मेरी खुली

सआदत हसन मन्टो

गजब की बहार और गजब सैर थी। यहाँ जो मैं आया कि घर से निकल टहलता-टहलता ज़रा बाग़ चला। बाग़ पहुँचने से पहले ज़ाहिर है कि मैंने कुछ बाज़ार और कुछ गलियाँ तय की होंगी और मेरी आँखों ने कुछ देखा भी होगा। पाकिस्तान तो पहले ही का देखा भाला था पर जब से "ज़िन्दाबाद" हुआ यह बस देखा। बिजली के खम्बे पर देखा, परनाले पर देखा, दुकान पर देखा—मतलब यह कि हर जगह देखा और जहाँ न देखा वहाँ देखने की हसरत लिये घर लौटा।

पाकिस्तान ज़िन्दाबाद—यह लकड़ियों की टाल है। पाकिस्तान ज़िन्दाबाद-स्टार्ट महाजिर हेयरकटिंग सैलून। पाकिस्तान ज़िन्दाबाद—यहाँ ताले मरम्मत किये जाते हैं। पाकिस्तान ज़िन्दाबाद—गरमागरम चाय। पाकिस्तान ज़िन्दाबाद—बीमार कपड़ों का अस्पताल। पाकिस्तान ज़िन्दाबाद—खुदा का शुक्र है कि यह दुकान सैयद मनवार हुसैन महाजिर जालन्धरी के नाम अलाट हो गई है।

एक मकान के बाहर यह भी लिखा हुआ देखा—पाकिस्तान ज़िन्दाबाद:—

गह पर एक पारसी भाई का है··· यानी हजरत कहीं इसे भी अलाट न करा लीजिएगा।

सुबह का वक्त था। अजब बहार थी और अजब सैर थी। क़रीब-क़रीब सारी दुकानें बन्द थीं। एक हलवाई की दुकान खुली थी। मैंने कहा चलो लस्सी ही पीते हैं। दुकान की तरफ़ बढ़ा तो क्या देखता हूँ कि बिजली का पंखा चल तो रहा है लेकिन उसका मुँह दूसरी तरफ है। मैंने हलवाई से कहा, "यह उलटे रुख पंखा चलानेका क्या मतलब है ?" उसने घूर कर मुझे देखा और कहा : "देखते नहीं हो ?"

मैंने देखा पंखे का रुख क़ायदे-आज़म मोहम्मद अली जिनाह की रंगीन तस्वीर की तरफ़ था जो दीवार में टंगी हुई थी। मैंने ज़ोर का नारा लगाया "पाकिस्तान जिन्दाबाद" और लस्सी पिये बग़ैर आगे चल दिया।

बन्द दुकान के थड़े पर एक आदमी बैठा पूरियाँ तल रहा था। मैं सोचने लगा अभी परसों मैंने इस दुकान से चप्पल खरीदे थे। यह पूरीवाला किधर से आ गया। ख्याल आया शायद कोई दूसरी दुकान हो लेकिन बोर्ड वही था। सामने वही दंगे में झुलसा हुआ मकान था जिसकी बरसाती में बिजली का पंखा लटक रहा था। उसको देखकर मैंने सोचा था, आग जलाने में उसने भी काफ़ी मदद दी होगी।

पूरी वाले ने मुझे देखकर कहा, "क्या सोच रहे है आप बाबू जी ? गरमागरम पूरियाँ हैं।"

मैंने कहा : 'भाई ! मैं यह सोच रहा हूँ कि जहाँ तुम बैठे हो यहाँ जूतों की एक दुकान हुआ करती थी।"

पूरीवाला अपने माथे का पसीना पोंछ कर मुस्कराया, "जूतों की दुकान अब भी है लेकिन वह नौ बजे शुरू होती है और मेरी सुबह छह बजे से शुरू होती है और साढ़े आठ बजे खत्म हो जाती है।"

मैं आगे बढ़ गया।

क्या देखता हूँ कि एक आदमी सड़क पर काँच के टुकड़े बिखेर रहा है।

पहले मैंने ख़याल किया कि भला आदमी है समझता है कि ये टुकड़े लोगों को तकलीफ़ देंगे,इसलिये उन्हें चुन रहा है लेकिन जब मैंने देखा कि वह चुनने की बजाय बड़ी तरतीब से उन्हें इधर-उधर गिरा रहा है तो मैं कुछ दूर खड़ा हो गया।

झोली खाली करने के बाद वह सड़क के किनारे बिछे हुए टाट पर बैठ गया। पास ही एक दरख्त था। उस पर एक बोर्ड लगा था—"यहाँ साइकिलों के पंक्चर लगाए जाते हैं और उनकी मरम्मत की जाती है।"

मैंने कदम तेज़ कर दिये।

दुकान के साइनबोर्डों में एक अच्छी तब्दीली नज़र आई। पहले करीब करीब सब अंग्रेज़ी में होते थे। अब कुछ दुकानों पर उर्दू में लिखे हुए दिखाई पड़े। किसी ने ठीक कहा है जैसा देस वैसा भेस।

लिखावट अच्छी थी और नाम भी ऐसे थे कि फ़ौरन ध्यान खींच लेते थे। मिसाल के तौर पर "आराइश"—ज़ाहिर है कि दुकान में सजावट का सामान होगा। एक होटल खुला था, उसके माथे पर अरबी लिपि में "मा हज़र" लिखा था। आगे चलकर एक दुकान थी जिसका नाम "पापोशियाना" था यानी जूतों का आशियाना।

मैंने खुश होकर कहा "पाकिस्तान ज़िन्दाबाद" और आगे चलता रहा।

चलते-चलते साइकिल के चार पहियों पर एक अजीब किस्म की हाथ गाड़ी देखी। पूछा, "यह क्या है?" जवाब मिला, "होटल।" चलता-फिरता होटल था। चपातियाँ पकाने के लिए अंगीठी और तवा मौजूद, चार सालन तैयार, शामी कबाब तलने के लिए फ्राई पेन हाज़िर, पानी के दो घड़े, बर्फ़, लेमुनेड की बोतलें, नीबू निचोड़ने का खटका, ग्लास प्लेटें—मतलब यह कि हर चीज़ मौजूद थी।

कुछ दूर आगे बढ़ा तो देखा एक आदमी छोटे लड़के [illegible] रहा है। मैंने वजह पूछी तो मालूम हुआ कि लड़का [illegible] रुपये का नोट गुम हो गया है। मैंने

हुआ ! बच्चा है। कागज का छोटा-सा पुर्जा ही तो होता है एक रुपये का नोट, कहीं गिर पड़ा होगा। खबरदार जो तुमने इस पर हाथ उठाया।"

यह सुनकर वह आदमी मुझ से उलझ गया और कहने लगा :

"तुम्हारे नजदीक एक रुपये का नोट कागज का एक छोटा-सा पुर्जा है लेकिन जानते हो कितनी मेहनत के बाद यह कागज का छोटा-सा पुर्जा मिलता है आजकल।" यह कह कर वह फिर बच्चे को पीटने लगा। मुझे बहुत तरस आया। जेब से एक रुपया निकाला और उस आदमी को देकर बच्चे की जान छुड़ाई।

चंद क़दमों का ही फ़ासला तय किया होगा कि एक आदमी ने मेरे कंधे पर हाथ रखा और मुस्करा कर कहा, "रुपया दे दिया आपने उस बदमाश को ?"

मैंने जवाब दिया : "जी हाँ ! बहुत बुरी तरह पीट रहा था बेचारे को।"

"बेचारा उसका अपना लड़का है।"

"क्या कहा ?"

"बाप और बेटे दोनों का यही कारबार है। दो चार रुपये रोजाना इसी ढंग से पैदा कर लेते हैं।"

मैंने कहा, "ठीक है।" और क़दम बढ़ा दिये।

एकदम शोर मचने लगा। क्या देखता हूं कि लड़के हाथों में कागज के बंडल लिए चिल्ला रहे हैं औ अंधा-धुन्ध भाग रहे हैं। तरह-तरह की बोलियां सुनने में आईं। अखबार बिक रहे थे, ताजा-ताजा और गरमागरम खबरें—देहली में जूता चल गया—लखनऊ में फ़लां लीडर की कोठी पर कुत्तों ने हमला कर दिया—पाकिस्तान के एक नजूमी की भविष्यवाणी, कश्मीर दो हफ़्तों में आज़ाद हो जाएगा।

सैंकड़ों ही अखबार थे। आज का ताजा "नवाए सुबह"—आज का ताजा "अबुल वक़्त"—आज का ताजा "सुनहरा पाकिस्तान।"

अखबार बेचने वाले लड़कों का सैलाब गुज़र गया तो एक औरत नजर आई। उम्र यही कोई पचास के लगभग, सूरत बहुत गम्भीर। एक हाथ में

टंगा था, दूसरे में अखबारों के बण्डल। मैंने पूछा, "क्या आप अखबार बेचती हैं ?"

जवाब मिला, "जी हाँ।"

मैंने दो अखबार खरीदे और मन में इस औरत के लिए सम्मान की भावना लिये आगे बढ़ गया।

थोड़ी ही देर में कुत्तों का एक गोल का गोल दिखाई दिया। वे भौंक रहे थे और एक दूसरे को भंभोड़ रहे थे, प्यार कर रहे थे और काट भी रहे थे। मैं डर कर एक तरफ हट गया क्योंकि पन्द्रह रोज़ हुए कुत्ते ने मुझे काट खाया था और पूरे चौदह दिन तक मुझे सी० सी० के टीके अपने पेट में भुँकवाने पड़े थे।

मैंने सोचा क्या ये सब कुत्ते शरणार्थी हैं या ये हैं जो यहाँ से जाने वाले अपने पीछे छोड़ गए हैं। कोई भी हों उनका ख्याल तो रखना ही चाहिये। जो शरणार्थी हैं उन्हें फिर से आबाद किया जाए और जिनके मालिक नहीं हैं उन्हें उनकी जाति के लिहाज़ से उन लोगों के नाम एलाट कर दिया जाए जिन के कुत्ते उस पार रह गए हैं और जिनका कोई वाली-वारिस नहीं उनके लिए लकड़ी की टाँगें मुहैया की जाएँ ताकि वे उनके साथ ही अपना शगल पूरा करते रहें।

कुत्तों का गोल चला गया तो मेरी जान में जान आई। मैंने कदम बढ़ाने शुरू किये।

मैंने एक अखबार खोला और उसे देखना शुरू किया। पहले ही पृष्ठ पर एक फ़िल्म एक्ट्रेस की तस्वीर थी—तीन रंगों में। एक्ट्रेस का शरीर आधा नंगा था। नीचे यह इबारत दर्ज थी :

"फ़िल्मों में बे-हयाई का प्रदर्शन कैसे किया जाता है इसका कुछ अन्दाज़ा ऊपर की तस्वीर से हो सकता है।"

मैंने दिल-ही-दिल में "पाकिस्तान ज़िन्दाबाद" का नारा लगाया और अखबार को फ़ुट-पाथ पर फेंक दिया।

दूसरा अख़बार खोला। एक छोटे से इश्तहार पर नज़र पड़ी। मज़मून यह था :

"मैंने कल अपनी साइकिल लायड्स बैंक के बाहर रखी। काम ख़त्म करके जब लौटा तो क्या देखता हूँ कि साइकिल पर पुरानी गद्दी कसी हुई है लेकिन नई गायब है। मैं गरीब शरणार्थी हूँ। जिसने ली हो मेहरबानी करके लौटा दे।"

मैं खूब हँसा और अख़बार तह करके अपनी जेब में रख लिया। चंद गज के फ़ासले पर एक जली हुई दुकान दिखाई दी। उसके अन्दर एक आदमी बरफ़ की दो मोटी-मोटी सिलें रखे बैठा था। मैंने दिल में कहा, 'आख़िर इस दुकान को किसी तरफ़ से ठंडक पहुँच ही गई।"

दो-तीन साइकिलें देखीं थोड़ी-थोड़ी देर के बाद। मर्द चला रहे थे और एक-एक औरत बुरका पहने पीछे केरियर पर बैठी थी। पाँच-छह मिनट के बाद एक और इसी क़िस्म की साइकिल नज़र आई लेकिन बुरक़े वाली औरत आगे हैंडिल पर बैठी थी। एकाएक ख़रबूज़े के छिलके पर से साइकिल फिसली। सवार ने ब्रेक दबाए। फिसलने और ब्रेक लगने के दोहरे अमल से साइकिल उलट कर गिरी। मैं दौड़ा मदद के लिए। मर्द औरत के बुरक़े में लिपटा हुआ और औरत बेचारी साइकिल के नीचे दबी हुई थी। मैंने साइकिल हटाई और उसको सहारा देकर उठाया। मर्द ने बुरक़े में से मुँह निकाल कर मेरी तरफ़ देखा और कहा, "आप तशरीफ़ ले जाइये, हमें आपकी मदद की ज़रूरत नहीं।"

यह कह कर वह उठा, औरत के सिर पर औंधा-सीधा बुरक़ा अटकाया और उसको हैंडिल पर बिठा यह जा वह जा। मैंने दिल में दुआ की कि आगे सड़क पर ख़रबूज़े का कोई और छिलका न पड़ा हो।

थोड़ी ही दूर दीवार पर एक इश्तहार देखा जिसका शीर्षक बहुत दिलचस्प था—"मुसलमान औरत और पर्दा।"

मैं बहुत आगे निकल गया। जगह जानी-पहचानी थी मगर वह मूर्ति कहाँ थी जो मैं देखा करता था। मैंने एक आदमी से जो घास के तख़्ते पर आराम

कर रहा था पूछा, "क्यों साहब यहाँ एक मूर्ति होती थी, वह कहाँ गयी है ?"
आराम करने वाले ने आँखें खोलीं और कहा, "चली गई।"

"चली गई--आपका मतलब है अपने आप चली गई ?"

"वह मुस्कराया, "नहीं उसे ले गए।"

मैंने पूछा, "कौन ?"

जवाब मिला, "जिनकी थी।"

मैंने दिल में कहा, "लो अब मूर्तियाँ भी अपना देश छोड़ने लगीं—एक दिन वह भी आएगा जब लोग अपने-अपने मुर्दे भी कब्रों से उखाड़ कर ले जाएँगे।" यही सोचते हुए कदम उठाने वाला था कि एक साहब ने जो मेरी ही तरह टहल रहे थे मुझ से कहा, "मूर्ति कहीं गई नहीं यहीं है और हिफाजत से रखी हुई है।"

मैंने पूछा, "कहाँ ?"

उन्होंने जवाब दिया, "अजायब घर में।"

मैंने दिल में दुआ माँगी, "ऐ खुदा वह दिन न लाइयो कि हम सब अजायब घर में रखे जाने के काबिल हो जाएँ।"

फुटपाथ पर देहली के एक शरणार्थी अपने लड़के के साथ सैर कर रहे थे। लड़के ने उनसे कहा, "अब्बा जान ! हम आज छोले खाएँगे।"

अब्बा जान के कान सुर्ख हो गए। "क्या कहा ?"

लड़के ने जवाब दिया, "हम आज छोले खाएँगे।"

अब्बा जान के कान और सुर्ख हो गए, "छोले क्या हुआ, चने कहो।"

लड़के ने बहुत भोलेपन से कहा, "नहीं अब्बा जान ! चने दिल्ली में होते हैं। यहाँ सब छोले ही खाते हैं।"

अब्बा जान के कान अपनी असली हालत पर आ गए।

मैं टहलता-टहलता लारेंस बाग पहुँच गया। वही बाग था पुराना लेकिन चहल-पहल नहीं थी। औरतें तो न होने के बराबर थीं। फूल खिले हुए थे, कलियाँ चटक रही थीं, हवा में खुशबू बसी हुई थी। मैंने सोचा औरतों को क्या हुआ है जो घर में कैद हैं। ऐसा खूबसूरत बाग, इतना सुहाना मौसम !

इनका बोझ क्यों नहीं उठाती, लेकिन मुझे फ़ौरन ही इसका जवाब मिल गया जब मेरे कानों में एक बहुत ही भोंडे और गन्दे गाने की आवाज आई और जब मैंने लारेंस बाग की रविशों पर फटी-फटी निगाहों वाले गोश्त के बेहंगम लोथड़ों को टहलते देखा तो मुझे दुःख हुआ और यह दुःख और भी बढ़ गया जब मैंने सोचा कि फूल बेकार खिल रहे हैं, कलियां बिना मतलब के चटक रही हैं। ये जो इनकी तरफ़ देखे बगैर चले जा रहे हैं, ये जो इनकी खुशबू से बिल्कुल बे-ख़बर हैं—क्या इनकी जगह इस बाग की बजाय किसी दिमाग़ी शफ़ाख़ाने में नहीं? कोई मदरसा नहीं जहां इनके दिमागों की बन्द खिड़कियां खोल दी जाएं, इनकी आत्मा के जंग खाए हुए ताले तोड़ डाले जाएं? अगर कोई ऐसा नहीं कर सकता—मेरा मतलब है अगर इन्सान का दिमाग इन इन्सानों के दिमाग को सुधार नहीं सकता तो क्या वह इन्हें चिड़ियाघर में नहीं रख सकता जो लारेंस गार्डन ही में क़ायम है।

मेरा मन दुःखी हो गया। मैं बाग़ से बाहर निकल रहा था कि एक साहब ने पूछा, "क्यों साहब! यही बाग़े-जिनाह है?"

मैंने जवाब दिया, "जी नहीं, यह लारेंस बाग़ है।"

वह साहब मुस्कराए, "आप चिड़ियाघर से तशरीफ़ ला रहे हैं?"

"जी हां।"

वह साहब हँस पड़े, "जनाब जब से पाकिस्तान क़ायम हुआ है इसका नाम बाग़े-जिनाह हो गया है।"

मैंने उनसे कहा, "पाकिस्तान जिन्दाबाद।"

वह और ज्यादा हँसते हुए लारेंस बाग़ में चले गये और मुझे ऐसा महसूस हुआ कि मैं दोजख़ से बाहर निकला हूँ।

चलता-पुर्ज़ा

कृष्ण चन्द्र

मिस्टर चलता-पुर्ज़ा से मेरी मुलाकात बहुत पुरानी है—इतनी पुरानी कि वह बचपन के बीते हुए दिनों तक जाती है। मुझे याद है कि जब मैं बहुत छोटा-सा था—इतना छोटा कि बात भी न कर सकता था बल्कि सिर्फ घर के आँगन में घुटनों के बल घिसट के चलता था और आँगन के फर्श पर पड़ी हुई हर चीज़ को अपनी नन्ही उँगलियों से पकड़े उसे मुँह में डालने की फ़िक्र में रहता था—उन दिनों मेरी मुलाकात अचानक मिस्टर चलता-पुर्ज़ा से हो गई।

बात यूँ हुई कि सर्दियों की खुली धूप में रोटी का टुकड़ा हाथ में लिये और दूध की कटोरी सामने रखे फर्श पर बैठा था और इस बात का इरादा कर रहा था कि रोटी के टुकड़े को दूध में भिगो के खाऊँ कि इतने में मुझे सामने की दीवार पर एक हरे रंग का तोता नज़र आया और उसकी तरफ देख के पहले मुस्कराया, फिर हँसने लगा। वह तोता मुझे बहुत अच्छा लगा। तोते ने कहा, "टें टें !" यानी 'कहो बुद्धू मियाँ अच्छे तो हो' और मैं ज़ोर से हँस दिया। इसके बाद तोते ने अपने खूबसूरत पर फैलाए और आसमान की तरफ उड़ गया और मैं गर्दन ऊँची करके ऊपर आसमान की तरफ उसको

ऊँची उड़ान को हैरत से तकता गया कि
मेरे पास से गुज़र गया और मैं पलट
कौआ मेरी रोटी का टुकड़ा चोंच में
मैं हैरत से कभी उसकी चोंच को
देखने लगा, फिर अपने खाली हा
मुँह बिसूर कर रोने लगा क्योंकि
रोटी का टुकड़ा खा रहा था। इस
पहली मुलाक़ात के बाद हमेशा
... पहली बार हमेशा रोना
... ...

वाली खुशी ही होती है। हाँ तो मैं मिस्टर चलता-पुर्जा से अपनी दूसरी मुलाकात का हाल बयान कर रहा था। जैसा मैंने अभी कहा है तो मिस्टर चलता-पुर्जा दिन में कई बार मुलाकात होती है लेकिन यहाँ मैं सिर्फ उन मुलाकातों का हाल बयान करना चाहता हूँ जो मुझे याद रह गई हैं और जिन्हें मैं कभी नहीं भूल सकता।

स्कूल में ऐसा इत्तिफ़ाक हुआ कि वह एक गाँव का स्कूल था जिसमें मैं सब लड़कों से अमीर समझा जाता था। चुनांचे मेरे कपड़े सबसे अच्छे होते थे, मेरी किताबें सबसे शानदार होती थीं और मेरा बस्ता धुला हुआ और चमकता हुआ होता था। ऐसे बच्चे के साथ स्कूल में जो सलूक होता है उसे अलाई-पसंद माँ-बाप नहीं जानते और वे यह भी नहीं समझ सकते कि उनका बच्चा क्यों बगैर मुँह धोये, मैला बस्ता हाथ में लिये, मैले कपड़े पहने स्कूल जाने की ज़िद करता है। खैर! छोड़िये इस बात को। यह तो एक पुरानी कहानी है कि बच्चे माँ-बाप को नहीं समझते और माँ-बाप बच्चे की तकलीफों का हाल नहीं जानते, इसलिए उनके दरमियान अक्सर चलता-पुर्जा आ जाता है। और अक्सर आते जाते रहते हैं और अक्सर आते जाते रहेंगे। जब तक माँ-बाप और बच्चे मिलकर उनके खिलाफ कोई मोरचा क़ायम नहीं करते इस मुसीबत से छूटना मुश्किल है।

तो साहब बात यह निकली कि स्कूल में मेरे पास बहुत अच्छे सफेद रंग के कागज़ होते थे और उन पर मेरी लिखाई बहुत अच्छी होती थी। मेरे करीब जो लड़का बैठता था उसके पास और क्लास

के पास बादामी

रंग के पतले-पतले कागज़ होते थे

में 'अ लफ़', 'बे',

'ते' लिखते थे

रहता और कुढ़ता

हुए लड़के ने पूछा—

सबसे अच्छे हैं, मेरी

।" मेरी तरफ़ देखकर

, "यही तो तुम्हारी

क़लम भी। इस पीले

बादामी कागज़ पर हरफ़ बहुत अच्छे उभरते हैं और तुम्हारी यह खूबसूरत क़लम किस काम की है, 'अलिफ़', 'बे', 'ते' लिखने के लिए बिलकुल नामौज़ूँ है। तुम ज़रा मेरी क़लम तो देना।"

यह कहकर उसने अपनी बाँस की कलम मेरे हाथ में थमा दी और थोड़ी देर के बाद मुझे मालूम हुआ कि मेरे सफ़ेद काग़ज़ उसके पास चले गए हैं और उसके बादामी कागज़ मेरे पास आ गए हैं, मेरी काँच की खूबसूरत दवात उसके पास पहुँच गई है और उसकी मिट्टी की भद्दी दवात मेरा मुँह ताक रही है, मेरी अंग्रेजी क़लम उसके हाथ में है और उसकी बाँस की टूटी हुई कलम मेरे हाथ में है। उसका मैला बस्ता भी मेरे पास आ जाता और मेरा नया बस्ता उसके पास पहुँच जाता मगर वह लड़का खुद ही नहीं माना। असल में मिस्टर चलता-पुर्ज़ा बहुत होशियार होता है। वह जानता है कि उसे कहाँ तक वार करना है और कहाँ पर रोक देना है। एक जल्लाद में और चलता-पुर्ज़ा में यही तो फ़र्क़ है कि कमबख्त जल्लाद को हाथ रोकने का अख्तियार नहीं है लेकिन चलता-पुर्ज़ा को है। इसलिए मैं उसे जल्लाद से ज्यादा खतरनाक समझता हूँ।

यह जो सफ़ेद कागज़ को बादामी कागज़ में बदल देने का हेर-फेर है यही असल में मिस्टर चलता-पुर्ज़ा के करतब की जान है। बड़े होकर यही साहब सोने के हार को कागज़ के कोरे वरक़ में तबदील कर देते हैं, सौ-सौ के नोट को दो-दो सौ के नोट बना देते हैं, एक तोले सोने को दो तोले सोने में तबदील कर देते हैं, तांबे को चाँदी में, चाँदी को सोने में, सोने को हीरे में और हीरे को कोयले में बदल देते हैं। आखिर में हमेशा यही होता है कि हीरे मिस्टर चलता-पुर्ज़ा की मुट्ठी में रह जाते हैं और कोयले अपनी मुट्ठी में आते हैं जैसे उस दिन अपने हाथ में अच्छे काग़ज़ों की बजाय [illegible] कागज़ आ गए थे। आज भी जब इस वाक़िए को गुज़रे हुए एक [illegible] गया है मैं ग़ौर करता हूँ तो मालूम होता है कि आज भी अच्छे [illegible] का शौक़ बाक़ी है लेकिन हरफ पहले ही की तरह बुरा है यानी [illegible] न बन सका। कुछ लोग कहते हैं कि कोयलों की दलाली में

हाथ काला होता है लेकिन मैं जानता हूँ कि कोयलों की दलाली में दलाल का मुँह कभी काला नहीं होता—काला होता है तो उस आदमी का जिसके हाथ से सफ़ेद कागज जाते हैं और बादामी कागज आते हैं।

लेकिन बचपन के रोटी के टुकड़े और लड़कपन के सफेद कागज की हक़ीकत क्या है। ये तो एक-दो मिसालें मैंने आपको इसलिए दी हैं ताकि आपको मिस्टर चलता-पुर्ज़ा का चरित्र मालूम हो जाए। जवानी में आकर तो मिस्टर चलता-पुर्ज़ा बहुत-से पर-पुर्ज़े निकालने लगता है और लाखों का हेर-फेर करता है और करोड़ों आदमियों की रोटी छीन लेता है। उसका दौर गली-महल्ले से लेकर बाज़ार तक और बाज़ार से लेकर आफ़िस तक और आफ़िस से लेकर बड़ी-बड़ी सल्तनतों तक होता है। आज के ज़माने में तो मिस्टर चलता-पुर्ज़ा की बड़ी अहमियत है बल्कि मैं तो यह कहता हूँ कि आज के समाज का कोई पुर्ज़ा ऐसा नहीं है जो मिस्टर चलता-पुर्ज़ा के बग़ैर चल सके। यों समझना चाहिये कि मिस्टर चलता-पुर्ज़ा मौजूदा जिन्दगी का मर्कज़ी (केन्द्रीय) चक्कर है और हम लोग सिर्फ़ घनचक्कर हैं कि जब कौआ रोटी का टुकड़ा लेकर उड़ जाता है तो ताली और मचाने के सिवा कुछ नहीं करते।

मेरे बचपन का कौआ और मेरे लड़कपन का उचक्का और आजकल का मिस्टर चलता-पुर्ज़ा बड़े मज़े में रहता है। भेस बदलने की तो उसकी पुरानी आदत है और यह कभी जाएगी भी नहीं लेकिन वह रहता बड़े मज़े में है। उसके पास गाड़ी, मोटर, नौकर-चाकर, बीबी, बंगला, फ़्लैट, दौलत, इज़्ज़त सब कुछ मौजूद है। जिन्दगी में अक्सर आपको ऐसे चलते-पुर्ज़े दिखाई देंगे जिनके सामने हम लोग बिलकुल बैठे हुए पुर्ज़े मालूम होते हैं।

लेकिन एक बात में मिस्टर चलता-पुर्ज़ा हमेशा दूसरे लोगों से मात खा जाता है और यही एक बात है जो आम लोगों को यानी मेरे और आप जैसे लोगों को मिस्टर चलता-पुर्ज़ा से अलग करती है। और यही एक बात है जिससे हमेशा मिस्टर चलता-पुर्ज़ा को चाहे वह किसी रूप में आपके सामने

क्यों न आ गया हो आप पहचान सकते हैं और वह यह है कि आम लोग अपनी गुज़र बसर अपनी मेहनत से करते हैं । लेकिन मिस्टर चलता-पुर्ज़ा हमेशा अपनी गुज़र-बसर दूसरों की मेहनत से करता है । यह एक ऐसी कसौटी है जिस पर खरे-खोटे और चलते-पुर्ज़े को परखा जा सकता है । इसकी और कोई दूसरी पहचान नहीं है । दूसरी पहचान बताने वाले आपको बहुत से लोग मिलेंगे मगर वे लोग खुद चलते-पुर्ज़े हैं जो आपको गलत पहचान बताकर धोखे में रखना चाहते हैं । इसके अलावा चलते पुर्ज़े की एक क़िस्म और भी है जिसे चलता-पुर्ज़ा की बजाय चलती-पुर्ज़ी कहना ज्यादा मुनासिब होगा । चलता-पुर्ज़ा से चलती-पुर्ज़ी हमेशा ज्यादा खतरनाक साबित होती है मगर आज यह हमारा विषय नहीं है, इसलिए सिर्फ़ इतने ही पर बस करता हूँ । चलते-चलते चलते-पुर्ज़े का एक आखिरी वाक़िया आपको और सुना दूँ जो अभी मेरे साथ पेश आया । थोड़े दिन गुज़रे चलता पुर्ज़ा मेरे पास आया और मुझसे देर तक इधर-उधर की बातें करके और बहुत सी हमदर्दी जता के मुझसे कहने लगा, "भाई ! तुम इस छोटे-से मकान में कैसे गुज़र करते हो । तीन तो कमरे तुम्हारे पास हैं और एक बाथरूम और एक छोटा-सा किचन, और तुम लोग बीवी-बच्चे मिलाकर छह आदमी हो । कैसे गुज़र करते होंगे इस छोटे से मकान में ।"

अब तक मुझे ख़याल भी नहीं आया था कि मैं तकलीफ़ में रहता हूँ । मेरा ख़याल था, मैं बहुत मजे में हूँ लेकिन भला हो मिस्टर चलता-पुर्ज़ा का उन्होंने मुझे मेरी तकलीफ़ का एहसास दिलाया ।

मैंने कहा, "हाँ भाई, तकलीफ़ तो है ।"

इसके बाद मिस्टर चलता-पुर्ज़ा ने कहा, "और भाई यहाँ से तो स्कूल बहुत दूर होगा । तुम्हारे बच्चे कहाँ पढ़ने जाते हैं ?"

मैंने एकाएक सोचा, सच में बच्चों का स्कूल तो यहाँ से दो मील दूर है । बेचारे रोज़ बस में बैठकर इतनी दूर जाते हैं और इन नन्हीं जानों को इससे कितनी कोफ़्त होती होगी । इसका मैंने अभी तक कोई अंदाज़ा ही नहीं किया

इसलिए मैंने फ़ौरन बड़ी घबराहट में मिस्टर चलता-पुर्ज़ा से कहा,

"भाई तुम बिलकुल ठीक कहते हो। बच्चों का स्कूल तो बहुत दूर है। कहीं अच्छा-सा मकान दिलवा दो।" मिस्टर चलता-पुर्जा गौर करने के बाद बोला, "तुम्हें अगर शहर के बीच में कोलाबे में मकान मिल जाए तो कैसा रहे ?"

मैंने खुशी से उछलकर कहा, "कोलाबे में मकान मिल जाए तो मेरे ऐसा खुशकिस्मत कौन होगा।"

मिस्टर चलता-पुर्जा और गौर करने के बाद बोला, "एक मकान तो है कोलाबे में लेकिन वह मकान छोड़ना नहीं चाहते हैं। वह चाहते हैं कि उन्हें शहर से बाहर कहीं मकान मिल जाए तो बदल लें। अंग्रेज मियां-बीवी हैं, शहर से बाहर रहना पसन्द करते हैं।"

मैंने उम्मीद-भरे लहजे में कहा, "तो मेरा मकान उन्हें दे दो। भाई यह तो शहर से क्या गांव से भी बाहर है, बिलकुल उजाड़ बियाबान में दरवेशों की तरह रहता हूं। यह मकान उन्हें दे दो और उनका मकान मुझे दिलवा दो।"

वह बोला, "बीच में सिर्फ पांच सौ रुपये की बात आ पड़ी है। उन लोगों ने अभी पांच सौ रुपये का कमरों में रंग कराया है। वह तुम दे दो तो बात पक्की समझो।"

मैंने बात पक्की करने के लिए पांच सौ रुपये उसी वक्त दे दिये। उधर वह अंग्रेज जोड़ा भी राजी हो गया। हमारा मकान उन्हें बेहद पसंद आया और उनका मकान हमें पसन्द आया। हम दोनों मिस्टर चलता-पुर्जा के बहुत एहसानमन्द थे। आखिर एक दिन मकान तबदील करने का मुहूर्त निकल आया। करार पाया कि उस रोज हम लोग कोलाबे जायेंगे और वे लोग वारसोवा आ जायेंगे। दोनों तरफ लोग बहुत खुश थे और हमारी खुशी देख कर मिस्टर चलता-पुर्जा की बाछें खिली जाती थीं।

उस रोज हम लोग सुबह सवेरे उठकर सामान ट्रक में लाद कर कोलाबे रवाना हुए और कोलाबे वाला जोड़ा वारसोवा की तरफ चला। बीच में जाने क्या गड़बड़ हुई। इसका हाल बहुत लम्बा है। संक्षेप में कहता हूं कि शाम होते-होते मैं कोलाबे में था और वे लोग वारसोवा पहुंच गये लेकिन घर दोनों में से किसी को न मिल सका—न मेरा उनको और न उनका मुझको। जाने

कैसी क़ानूनी पेचीदगी बीच में आई कि आज तक ये दोनों घर मिस्टर चलता-पुर्ज़ा के पास हैं और वह अंग्रेज जोड़ा वाग्गोंबा के एक होटल में रहता है और मैं कोलाबे की सड़क पर इस तरह रहता हूँ कि दरवेश भी क्या रहते होंगे।

तो कहने का मतलब यह है कि मकान की कमी नये मकान बनाने से दूर की जा सकती है, मकानों की हेरा-फेरी से उसे दूर नहीं किया जा सकता। यह शराफ़त नहीं चलता-पुर्ज़ापन है और चलता पुर्ज़ापन चालों हेरा-फेरी से काम लेता है। नतीजा वही दरवेशी और कलंदरी।

आप पूछेंगे इसे भी दूर करने का कोई तरीका है। यह चलता-पुर्ज़ापन कैसे दूर किया जा सकता है? इसका हल कोई चलता पुर्ज़ा आपको नहीं बताएगा। अपनी मौत कौन चाहता है। और इसका हल इतना आसान भी नहीं है क्योंकि ज़िंदगी में दो तरह के लोग मिलते हैं। एक तो वे जो चलते पुर्ज़े हैं, दूसरे वे जो बैठे हुए पुर्ज़े हैं। आप लोगों का क्या ख़याल है कि अगर सभी लोग चलते-पुर्ज़े हो जाएँ तो इसका हल निकल सकता है। कुछ लोग चाहते हैं कि सभी पुर्ज़े बैठ जाएँ।

मैं समझता हूँ कि दोनों तरीके ग़लत हैं क्योंकि आपने भी देखा होगा कि अक्सर बहुत से चलते-पुर्ज़े आख़िर में बैठ जाते हैं और चलने से इनकार कर देते हैं। दूसरी तरफ़ बहुत से बैठे हुए पुर्ज़े एकाएक उठकर चलने लगते हैं यानी चलते हुए पुर्ज़े भी बैठे हुए पुर्ज़ों से निकलते हैं और हर आदमी अपने अन्दर चलते-पुर्ज़े का रुझान भी रखता है यानी हर आदमी कभी-न-कभी कोई ऐसी बात कर जाता है जिसे यार लोग "हाथ की सफ़ाई" कहते हैं।

इसलिए यह लड़ाई दोनों तरफ़ लड़ी जाएगी यानी अन्दर से भी और बाहर से भी। बाहर के चलते पुर्ज़े का भी मुक़ाबिला करो और अन्दर वाले का भी यानी ख़ुद भी मेहनत करो और दूसरों से भी मेहनत कराओ और किसी एक की मेहनत का फल दूसरे को न खाने दो। जब यों होगा तो ज़िंदगी में न कोई चलता-पुर्ज़ा होगा न कोई ढीला पुर्ज़ा, बल्कि सब काम के पुर्ज़े होंगे, फिर ज़िन्दगी से चलता-पुर्ज़ापन अपने आप ही ख़त्म हो जाएगा और इन्सान और उसका समाज और उसकी ज़िन्दगी रोशन और साफ़ सूरज के साथ चलेगी।

मकान की तलाश

शफ़ीक़ुर्रहमान

मकान की तलाश—एक अच्छे और दिलपसन्द मकान की तलाश दुनिया के सबसे बड़े और मुश्किल कामों में से है। ज़रा खुद ही सोचिये कि मकान तलाश करने वाले का क्या-क्या जी नहीं चाहता—मकान हल्का-फुल्का हो, खूबसूरत हो, आसपास का माहौल अच्छा हो, सिनेमा बिलकुल नज़दीक हो, बाज़ार भी दूर न हो। मतलब यह कि बीच में मकान हो तो चारों तरफ़ शहर की सब दिलचस्पियाँ घेरा बनाए हुए हों। मकान तलाश करने वाले को आप सड़क पर जाते देखिये। उसका हुलिया, उसकी चाल, उसके चेहरे की हालत, उसकी हरकतें, सब चीख-चीखकर कह रहे होंगे कि यह बेचारा मकान की तलाश में है। मकान तलाश करने वाले का हाल कुछ कुछ आशिक़ से मिलता-जुलता होता है। आज से सौ-दो-सौ साल पहले के आशिक़ों से नहीं, बल्कि आजकल के आशिक़ों से, यानी कोई चीज़ उनकी कसौटी पर पूरी नहीं उतरती। अक्सर अच्छा-ख़ासा मकान मिल जाता है, फिर भी दिल में गुदगुदी-सी उठती है कि ज़रा और हाथ-पैर मारो, शायद इससे बेहतर चीज़ मिल जाए।

आप सोचेंगे तो यही कि भला मकान तलाश करने में देर ही क्या लगती है। अखबार में पता चला या छुट्टी के दिन साइकिल संभाली और चल दिये। जहाँ 'मकान किराए के लिए खाली है' लिखा देखा ठहर गए। मकान को इधर-उधर से देखा, पाँच-दस मिनट में पसन्द कर डाला, किराया तय किया और शाम तक आ धमके। मगर नहीं, आपका खयाल बिल्कुल गलत है। ये मुश्किलें उनको खूब मालूम होंगी जिन्हें कभी इस तरह का तजुरबा हुआ हो। सबसे ज्यादा हमदर्दी के काबिल वे लोग हैं जिनकी क़ीमती उम्र का ज्यादा हिस्सा मकान की तलाश में गुज़रता है और उनसे दूसरे दर्जे पर हैं स्कूल-कालिजों में पढ़ने वाले लड़के जिन्हें अव्वल तो मकान अपनी पसंद का मिलता ही नहीं और अगर कहीं मिल भी जाए तो फट से सवाल होता है। "शादी हुई है या नहीं ?" अब आप ही बताइये इस क़िस्म के नासमझ लोग इतना भी नहीं समझते कि एक वक्त में दो काम किस तरह हो सकते हैं। और जो किसी चालाक लड़के ने कह भी दिया कि "हाँ शादी हो चुकी है, करलो हमारा क्या करोगे ?" तो फरमाइश होती है कि "पहले बीवी हाज़िर करो।" जहाँ एक ऐसे स्टूडेंट को जिसकी शादी हो चुकी हो नेक, खुदा से डरने वाला और शराफ़त का पुतला माना जाता है वहाँ एक बदक़िस्मत कुआँरे को आवारा, बदतमीज, बुरे चालचलन वाला और खतरनाक समझा जाता है, हालांकि मामला अक्सर बिलकुल उलटा हुआ करता है।

बात असल में यों थी कि हमारे इम्तिहान नजदीक थे और होस्टल का माहौल कुछ-कुछ खराब होने लगा था। मुसीबत यह थी कि इम्तिहान सिर्फ़ हमारी जमात के थे। और लोगों के इम्तिहान या तो हो चुके थे या एक-दो माह बाद होने वाले थे।

बहुत जब्त किया, पढ़ने की बहुत कोशिश की गई, कमरे में बाहर से ताला लगवाया जाता, चाबी नौकर के हवाले कर दी जाती और उसे खूब ताकीद की जाती कि खबरदार जो तूने शाम से पहले दरवाजा खोला है। मगर थोड़ी ही देर में कामन रूम से पिंग पाँग की टप-टप सुनाई देती, कभी

ब्रिज और शतरंज वालों का शोर, दो-दो मिनट के बाद ऊँचे कहकहे, साथ ही रेडियो से ठुमरी और क़व्वाली, पड़ोस के लड़कों का गाना-बजाना। कोई सितार बजा रहा है, कोई दिलरुबा। इन सबका मिक्सचर दिमाग़ में घुसता और सब कुछ मलियामेट करके रख देता। पढ़ा-लिखा सब बराबर हो जाता। शाम होती तो फ़ुटबाल की धमाधम और टेनिस लान से गेंद के बल्ले पर पड़ने की प्यारी आवाज़—दिल में गुदगुदी सी होने लगती कि चलो खेलें। लोग तालाब से भीगे-भीगे वापस आ रहे हैं। बहुत से लोग बन-सँवर कर सैर करने जा रहे हैं। ग़रज़ कि जी बहुत ज़ोर से ललचाता, दिमाग़ कुछ काम न करता। कोई आध घन्टे के बाद एकाएक जो होश आता तो अपने आपको या तो किसी सिनेमा हाल में पाते या किसी सड़क पर टहल रहे होते जो हॉस्टल से कम-से-कम दो तीन मील दूर होती। रात-भर अपने आपको लानत-मलामत करते और क़समें खाते कि अगर कल पूरे बीस घन्टे लगातार न पढ़ा तो नाम बदल लेंगे। आख़िर पास भी तो होना है और इरादे की मज़बूती भी तो कोई चीज़ है मगर दूसरा रोज भी इसी तरह गुज़र जाता। रोज़ क्या हफ़्ते इसी तरह गुज़र रहे थे। दिन भर कोई पचासों लड़के मिलने के लिए आते।

"हलो" और "आइये" की दो मुख़्तसर चीख़ें मारी जातीं और फिर वे लोग इस तरह चिमटते कि बस।

"अरे भई यह वक़्त भी कहीं पढ़ने का है। तोबा तोबा! तुम लोग ज़िन्दगी से बिल्कुल उकता बैठे हो। ऐसा भी क्या कि आदमी बिल्कुल धूनी रमाकर बैठ जाए। ईमान से अगर मैं दो रोज़ भी इस तरह पढ़ लूँ तो एक महीने के लिए लेट जाऊँ। अभी तो मुँह ज़रा सा निकल आया है। ज़रा आईना तो देखो। कौन-सी मुसीबत आई हुई है, इम्तिहान ही तो है। जब दिल चाहा पास हो जाएँगे। यह क्या कि अपना सत्यानाश ही कर डाला। अरे मियाँ……… ।"

इधर चेहरे पर ज़बरदस्ती की मुस्कुराहट है और दिल में दुआएँ माँगी जा रही हैं कि यह किसी तरह यहाँ से टले मगर तोबा कीजिए! लेकिन

फिर शुरू होता है : "कल हमारा क्रिकेट मैच था । यार तुम नहीं थे, मजा नहीं आया । वैसे हम लोग जीत तो फिर भी गए । वह जो है ना अपना छोटा सा लड़का हनीफ़, जईफ़ या रयीस—क्या नाम है उसका ? भई भूल गए तुम भी । वह कल गजब का खेला । उनका एक बॉलर था । खुदा झूठ न बुलवाए कोई सात फीट का होगा । पूरा गैंडे का गैंडा था । जब गेंद फेंकता था तो जमीन हिलती थी और स्टार्ट भी लेता होगा फ़रलांग भर का । उसके सामने अपना कोई लड़का भी नहीं जमा मगर वही छोटा सा लड़का, मैं उसका नाम फिर भूल गया । हां भाई वह कुछ कलाबाजी सी खाकर वह बल्ला घुमाता था कि कुछ न पूछो । जालिम ने वे शानदार हिट लगाई हैं कि बस ! मिनटों में सात स्कोर कर गया । मेरा ख्याल है कि तुम भी अच्छा खेलते । यार एक बात मानो, तुम इतना आहिस्ते न खेला करो । देखने वालों को कुछ भी मजा नहीं आता । हां भाई एक बात पूछना थी तुमसे । इम्तिहान के बाद तुम्हारा क्या प्रोग्राम है ? मैं पहाड़ों से ज्यादा मैदानों को पसंद करता हूं । पहाड़ों पर होता ही क्या है । बस पहाड़ ही पहाड़ होते हैं । न कोई नई चीज न तफ़रीह । यूं ही सुबह से शाम तक खानाबदोशों की तरह ठोकरें खाते फिरो, शाम को आकर सो जाओ । रात को पहाड़ों पर उल्लू बोलते हैं ।"

जी में आता है कि कह दें : "बेहूदा-नालायक़ इन्सान ! तू मैदानों को छोड़कर चाहे अंडमान चला जा मगर फ़िलहाल यहां से तो दफ़ा हो जा !" अगर पंद्रह-बीस मिनट तक वह साहब न टलें तो फिर निगाहें किताबों, कलेंडर और दरवाजे की तरफ़ दौड़ने लगती हैं और अगर वह इस पर भी न समझें तो फिर दबी ज़बान में इम्तिहान का ज़िक्र करना पड़ता है क्योंकि 'अनीस' ही ने तो कहा है :

खयाले-खातिरे-अहबाब चाहिए हरदम
'अनीस' ठेस न लग जाए आबगीनों को

वह अचानक चौंक पड़ते हैं : "अरे भई ! तोबा तोबा मैं भी कितना बदहवास हूं । यह भूल ही गया कि तुम्हारा इम्तिहान है । माफ़ करना मुझे सचमुच पता नहीं था । अच्छा इम्तिहान के बाद सही !"

चलिये एक से तो खलासी हुई। ज़रा सी देर में दूसरे साहब आते हैं और दुनिया की फिल्म इंडस्ट्री के अतीत, वर्तमान और भविष्य पर एक लम्बा लेक्चर देते हैं। मास्टर निसार और मिस इन्दुबाला से लेकर मामला रॉनेल्ड कालमैन और हेडी लेमार पर खत्म होता है और फिल्मों की आलोचना होती है और "जादू का डंडा", "फ़ौलादी मुक्का" और "ज़ालिम घसियारा" से लेकर "कुईन क्रिस्चेना" और "बिन हुर" तक सब पर रोशनी डाली जाती है। फिर अमरीकी और इंगलिश फिल्मों का मुकाबला होता है। आखिर में अपने देश की फिल्मों को गालियाँ दी जाती हैं। फिर एक तीसरे साहब आते हैं जो इश्क के बारे में अपनी नई तहक़ीक़ात, मशहूर आशिकों की जीवनी, इश्क करने के तरीक़े, इश्क़ के फायदे और नुकसान यानी सब कुछ ही तो बता देते हैं। फिर एक और साहब आते हैं जो दुनिया-भर की राजनीति पर एक सामान्य रिव्यू करके सिर्फ दो घंटों में दुनिया के बड़े-बड़े आदमियों की राजनैतिक गलतियाँ और उनकी खामियाँ सब कुछ समझा देते हैं। एक साहब सिर्फ कबड्डी के बारे में ही बोलते जाएँगे अब कोई उनसे पूछे कि मियाँ कबड्डी भी कोई खेल है? मगर वह कबड्डी का इतिहास, बड़े-बड़े खिलाड़ी, कबड्डी में दिलचस्पी लेने वाले बड़े-बड़े आदमी, राजे और महाराजे—गरज कि सब कुछ बता कर छोड़ेंगे। कोई साहब आएँगे तो मुक्केबाजी पर धुआँ-धार तक़रीर करेंगे, हालांकि उनका हुलिया ऐसा होगा कि मुक्का तो क्या अगर एक हल्का-सा चाँटा भी मार दिया जाए तो कम से कम चार-पाँच कला-बाजियाँ जरूर खा जाएँ। इधर ख्वाहमख्वाह हाँ-में-हाँ मिलाना पड़ेगी। मुस्कराकर अपनी राय जाहिर करनी पड़ेगी। सिग्रेटों के डिब्बे खाली करो। नौकर चाय लाते-लाते थक जाए। हाथ मिलाते-मिलाते उँगलियाँ दुखने लगें मगर दबी जबान से ज़िक्र तक न करो वरना कहीं ऐसा न हो कि दिल के शीशे को ठेस लग जाए। कोई आता है तो सिर्फ तफरीह के लिए घड़ी को चाबी देने लगता है। कोई साहब मुलतान की हल्की-फुल्की सुराही को इस बदतमीज़ी से पकड़ेंगे कि ज़रा-सी देर में एक हाथ में सुराही की गर्दन होगी और दूसरे हाथ में सुराही का बाक़ी हिस्सा—एक क़हक़हे में मामला खत्म।

कोई किताबें उलट डालेगा कि कहीं कोई उपन्यास या गजलों की किताब तो नहीं रखी। कोई अलबम ही देखने लगेगा। ज़रा नजर चूकी और एक-आध तस्वीर गायब। कोई साहब टेनिस का बल्ला उधार ले जाएँगे। और तो और, कभी-कभी तो पतलूनें तक महीना-महीना लोगों के यहां मेहमान रहती हैं। फिर कहा जाता है कि हॉस्टल की जिन्दगी बेहतरीन जिन्दगी है।

बहुत सोच-विचार के बाद नतीजा निकला कि मैं और बाक़र साहब दोनों एक मकान किराए पर लें। एक नमकीनी सुबह को हम दोनों ने चाय पीते हुए प्रोग्राम बनाया। कलेंडर में देखा तो शनिवार था। चूँकि शनिवार शुभ नहीं होता इसलिए प्रोग्राम यह बना कि इतवार को सवेरे इस मुहिम पर रवाना होना चाहिये। यह बताने की शायद ज़रूरत नहीं कि हम लोगों ने अख़बारों की मदद से और इधर-उधर फिरकर ख़ाली मकानों की सूची पहले ही बना ली थी। सबसे पहले हम एक डेरी फ़ार्म पर पहुँचे। वहाँ एक मकान खाली था। दरवाजे पर मुंशी बैठा ऊँघ रहा था। हमें देखकर हड़बड़ाकर उठा। उससे मकान के बारे में पूछा। उस अल्लाह के बन्दे ने जो डेरी के फ़ायदे पर लेकचर देना शुरू किया तो चुप होने का नाम ही न लेता था। दूध, मक्खन, मलाई, यह और वह—ग़रज़ कि एक-एक चीज़ गिनवा दी। शहर में नक़ली चीज़ें मिलती हैं, उनसे फ़लां-फ़लां बीमारियां फैली हैं।

हम तंग आकर बोले, "पहले मकान दिखा दो, फिर बातें करेंगे।" ख़ैर अन्दर गये। देखा कि एक बहुत बड़ा कमरा है जिसमें अगर फ़ुटबाल नहीं तो कम-से-कम टेनिस तो ज़रूर खेल सकते हैं। उसके साथ दो ज़रा-ज़रा से कमरे जैसे खिलाड़ियों के लिए बनवाए गए हों कि वे सुस्ता लें या कपड़े बदल लें। वह बोला, "ऊपर चलिये।"

हमें ख़याल हुआ कि शायद ऊपर कुछ मतलब के कमरे होंगे। देखा तो वही लम्बा-चौड़ा सा कमरा और दो नन्हे-मुन्ने कमरे। हम नाउम्मीद हो गए। बाक़र साहब बोले, "चलो भाई चलें, यह मकान तो वर्ज़िश करने वालों के लिए बनवाया गया है, भला हमारे किस काम का।"

"नहीं साहब अभी एक मंजिल और भी है।"

उम्मीद फिर बंध गई। ऊपर जाकर देखते है कि हू-बहू वही नक्शा। किस गधे ने बनाया था यह मकान? उलटे पाँव लौटे। बिस्मिल्लाह ही ग़लत। दूसरा मकान कोई आध मील की दूरी पर था। देखा कि दरवाज़े पर एक खतरनाक क़िस्म के मोलवी साहब हुक्का पी रहे हैं। हमें निहायत गुस्से की निगाह से देखा।

"मकान चाहिये आपको?" वह कड़के।

"जी हाँ।"

उन्होंने तीन-चार लम्बे-लम्बे कश लगाए और दाढ़ी से खेलते हुए बोले: "तो गोया दरअसल आपको मकान चाहिये?" जैसे हम उनसे मज़ाक़ कर रहे थे।

"तो आपको ज़रा तकलीफ़ करनी होगी। इस मकान की चाबी होगी मुन्शी क़लन्दर बख्श के पास जो रहते हैं चावड़ महल्ले में। मगर ठहरिये, खूब याद आया। अब वह कबाड़ी बाज़ार में रहने लगे। बड़े भले मानुस हैं। क्या कहूँ अगर जवानी में आप उन्हें देख पाते तो बस लट्टू हो जाते। यह उम्र हो गई मगर ऐसा जवान देखने में नहीं आया। (दोनों हाथ फैलाकर) यह सीना था—और (दोनों कुहनियाँ निकालकर) यह चेहरा था, बिलकुल शेर जैसा। ख़ुदा की शान अब वही कलन्दर बख्श हैं कि मुँह पर मक्खियाँ भिनकती हैं, फिर भी क्या मजाल जो आन-बान में फ़र्क़ आ जाए।"

बाक़र साहब बेचैन हो रहे थे, बोले, "साहब अगर बुरा मानें, ज़रा चाबियाँ—!"

"हाँ तो चाबियों का ज़िक्र हो रहा था। चाबियाँ तो उनके भतीजे ईजाद अली के पास होंगी क्योंकि उनका तो अपना कोई लड़का था नहीं। बस अपने मर्हूम (स्वर्गीय) भाई की निशानी को देखकर दिल ठंडा कर लिया करते थे मगर मुझे खतरा है कि कहीं चाबी उनका भांजा क़ुदरतुल्लाह न ले गया हो क्योंकि परसों अफ़वाह उड़ी थी कि वह डेरा-गाज़ीखां से वापस आ रहा है। वह

क़िला गूजरसिंह के पश्चिम वाले हिस्से में रहता है। एक बड़ी-सी नाली है, उसके पार एक बिजली का खम्भा है। मैं अच्छी तरह नहीं कह सकता कि वह वहीं रहता है या नहीं लेकिन मकान उसका वही है।"

"मगर हम इतनी दूर नहीं जा सकते।"

"आप चाबी का क्या करेंगे? लाइये मैं आपको नक़्शा समझाए देता हूँ।" यह कह कर लगे एक तिनके से ज़मीन पर नक़्शा समझाने—"यह नहाने की कोठरी है और यह है बावर्चीख़ाना—अरे मैं उल्टा कह गया, नहाने का कमरा यह है और वह है सीढ़ी। वहां एक कमरा है। तौबा-तौबा मैं भी कैसा अहमक़ हूं, वहां तो एक छोटी-सी कोठरी है और सीढ़ी है वहां।" मकान की हद से बाहर बताते हुए कहा।

"तो गोया सीढ़ी मकान के बाहर कहीं पड़ोस में है।"

"जी नहीं, सीढ़ी अन्दर की तरफ़ है।"

हम दोनों उठकर चल दिये।

"अजी ठहरिये, ज़रा सुनिये तो सही! ईमान की क़सम इस बार ठीक बताऊंगा। अब समझ में आ गया नक़्शा।" वह बुलाते ही रहे।

अब चले मकान नम्बर ३ की तलाश में। खुशक़िस्मती से यह मकान कालिज के बिल्कुल नज़दीक था। वैसे मकान था भी अच्छा-ख़ासा। हमें दूर ही से पसन्द आ गया। मालूम हुआ मकान के दो हिस्से हैं। एक में मालिक-मकान रहते हैं और दूसरा ख़ाली है। वह साहब अजीब अफ़ीमची से थे। बाक़र साहब आहिस्ते से बोले, "भई मुझे यह आदमी बिल्कुल पसन्द नहीं है। इसकी हरकतें अजीब-सी हैं।"

हमने कहा, "अस्सलाम अलैकुम।"

बोले, "वालैकुमस्सलाम।" एक-एक शब्द नाक से निकल रहा था। इसके बाद जो बातचीत हुई उसका भी वही हाल था।

"कैसे आना हुआ?"

"आपका मकान!" बाक़र साहब बोले।

"अजी बस क्या नाम, खुदा तुम्हारा भला करे। समझो कि बड़े खुश-किस्मत हो, जभी तो झट से ऐसा मकान मिल गया वरना क्या नाम—मैंने कहा जनाब बड़े-बड़े आदमी महीनों हैरान-परेशान गली-कूचों में भटकते फिरते हैं और जनाब मकान नहीं मिलता—और फिर यह महल्ला। बस खुदा तुम्हें खुश रखे, सब महल्लों का सरताज है दीवान साहब का कटरा।"

"क्या फरमाया आपने, दीवान जी का क्या ?"

"जनाब क्या नाम कि सब महल्लों का सरताज है दीवान साहब का कटरा। अब इस कटरे पर क्या नाम कि एक लतीफा याद आ गया। एक थे मैंने कहा मौलवी साहब। वह आये दिल्ली में कपड़ा खरीदने। अब खुदा तुम्हें खुश रखे होगा कोई शादी-ब्याह का मामला। अब किस्सा इस तरह चलता है कि उन्होंने कपड़ा खरीदा क्या नाम नील के कटरे से और वापस चले गए। अब साहब कोई दस साल के बाद उन्हें फिर ज़रूरत हुई कपड़े की। वह फिर दिल्ली आए और एक तांगे वाले से क्या नाम बोले, 'हमें नील के भैंसे ले चल' अब साहब खुदा तुम्हारा भला करे यों तो दिल्ली में हज़ारों बाज़ार और लाखों गलियां हैं और यों भी क्या नाम तांगे वाले होते हैं बड़े ज़ालिम, पर साहब तांगे वाले की समझ में कुछ न आया, बोला, 'बड़े मियाँ यह उम्र हो गई और हँसी-मज़ाक की आदत न गई, अब तक भला नील का भैंसा भी दिल्ली में किसी ने सुना है।' अब क्या नाम बड़े मियाँ भी चटाख से बोले, 'अबे ! मैंने कहा कल के लौंडे चलाता है हमें ! अभी दस साल पहले हमने नील के कटरे से कपड़ा खरीदा था और अब खुदा तुम्हारा भला करे दस साल में वह कमबख्त कटरा भैंसा भी न बन गया होगा।' अब साहब जी मज़ाक—"

"जनाब इस मकान का किराया ?"

"अरे साहब क्या नाम इतनी जल्दी काहे की है। जो मरज़ी आए दे देना। खुदा तुम्हें खुश रखे आपके आने से ज़री रौनक हो जाएगी। ज़री, मैंने कहा महफ़िलें गर्म हुआ करेंगी। यहाँ ताख़ों और तख़्तों पर महीनों गर्द जमी रहती है। आप दोनों माशा अल्लाह क्या नाम रंगीले दिखाई देते हैं। बस

जनाब मजा आ जाएगा और ख़ुदा तुम्हारा भला करे जब तक कोई सुनने वाला न हो क्या नाम गाने-बजाने का मजा ही क्या ।"

अब जो हम वहां से भागे हैं तो कोई आध मील आकर दम लिया । लाहौल वला क़ुव्वत गाने-बजाने की महफ़िलें । बस समझ लीजिए कि रोंगटे खड़े हो गए । जिस चीज़ से डरकर हॉस्टल से भागे थे वही सामने आ मौजूद हुई ।

वापस हॉस्टल आए । बाक़र साहब ने जेब से एक इश्तिहार निकाला । लिखा था, "एक मकान, बिजली और पानी का आराम, बावर्चीख़ाना, साफ़-सुथरा—हवेली सेठ रामनारायण लाल के पास ख़ानदानी दवाख़ाना के पीछे—कबाड़ी बाज़ार ।"

"अरे फिर वही कबाड़ी बाज़ार ?"

मकान देखा । मकान कुछ ऐसा था जैसे अमरीका में होते हैं यानी बेतहाशा ऊँचा । नीचे पौने दो कमरे या डेढ़ ही समझ लीजिए यानी एक औसत कमरा, दूसरा उससे आधा और तीसरा उससे भी आधा । फिर सीढ़ियां शुरू हुईं जैसे क़ुतुब साहब की लाट पर चढ़ रहे हों । चढ़ते गए, ऊपर जाकर ढाई कमरे मिले मगर असल में हिसाब के मुताबिक़ वहां सिर्फ़ सवा कमरा ही था यानी निचले कमरों से वे आधे थे ।

मकान दिखाने वाले बोले, "यह बाथरूम है ।"

"और नीचे ?" मैंने पूछा, "वह क्या था ?"

"जनाब वह बावर्चीख़ाना था ।"

"और साथ ये दो छोटे-छोटे कमरे ?"

"एक सामान रखने का गोदाम और दूसरा सोने का कमरा ।"

"बकवास है ।" मैंने झल्लाकर कहा ।

"अजी अभी ऊपर और कुछ भी है ।"

"नहीं साहब बस ।"

"अजी आपको हमारी क़सम ज़रा देखिये तो ।" वह साहब बोले ।

फिर वही अनगिनत सीढ़ियाँ चढनी पड़ी। अल्लाह-अल्लाह करके ऊपर पहुँचे। दिल बेतहाशा धड़क रहा था, साँस फूला हुआ था। ऊपर जाकर देखते हैं कि एक छोटी-सी कोठरी है, एक मुर्गियों का दरबा है, एक तरफ कबूतरों की छत्री है और एक कोने में पुराना ढोल पड़ा है। हमें हँसी आ गई। भला कोई इस मसखरे से पूछता कि छत पर कबूतर तो बेशक रखे जा सकते हैं मगर मुर्गियाँ कौन गधा रखता होगा और फिर वह ढोल ? सारे मकान का नक्शा ही फिजूल-सा था जैसे किसी अफीमची ने मकान बनाया हो। जब ज़रा पिनक दूर हुई एक-आध कमरा बनवा दिया, कोई कहीं है कोई कहीं।

"अब उतरना ही पड़ेगा।" हमने दिल में सोचा।

नीचे उतरकर फ़िहरिस्त निकाली। नया मकान देखा—देखते हैं कि खुली हुई जगह में एक खूबसूरत-सा मकान चमक रहा है। मैंने बाकर साहब से हाथ मिलाया। आख़िर हमने मंज़िल मार ली थी। अब जो दरवाज़े पर देखते हैं तो वहाँ लिखा था—'हसरत कदा' (निराशागार)'। तबियत पर ओस सी पड़ गई।

"इसका मतलब ?" बाकर साहब हैरान होकर बोले।

"जनाब यह किसी शायर का मकान है।" मैंने कहा।

शायर साहब बुलाए गए। मालूम हुआ वह निचले हिस्से में रहते हैं। ऊपर का हिस्सा खाली था। शायर साहब भी बस ऐसे कि डिबिया में बन्द करके रखने के क़ाबिल। दुबले-पतले शुतुरमुर्ग जैसे, नाक पर ऐनक चिपकी हुई। हुलिया ऐसा कि अगर सड़क पर जाते हों तो बच्चा तक बता दे कि वह जा रहा है शायर। चल किसी तरफ रहे हैं, मुँह कहीं है और कदम कहीं पड़ते हैं। बातें शुरू हुईं—बहुत ही खूबसूरत बातें। बात-बात में शायरी फ़रमाने लगे—जब रात को एक अजीब-सा नूर (ज्योति) छा जाता है, जब बेक़रार दिल बुरी तरह तड़प रहा होता है, जब आकाश में तारे एक दूसरे से आँख-मिचौली खेलते हैं तब जो लुत्फ़ ऊपर के मकान में आता है वह नीचे के मकान में कहाँ। आह ! अगर मेरा बस चले तो दुनिया के सारे मकान ऊपर

कि मकान बना दूँ ।" (यह जुमला हमारी समझ में नहीं आया) । हम अजीब मुसीबत में फँस गए । एक तरफ़ ऐसा खूबसूरत मकान और दूसरी तरफ़ यह शायर ।

वह एकाएक चमककर बोले, "साहब आप मुझे रूमान-पसंद लगते हैं ।"

"क्या मैं ?" मैंने हैरत से पूछा, "या यह—?"

"जी हाँ आप ! आपका हुलिया, आपके कपड़े, आपकी हजामत और आपके कपड़ों की खुशबू सब के सब गवाही दे रहे हैं ।"

मैं अपने इस नये खिताब पर हैरान था ।

शायर साहब फ़रमाने लगे, "जनाब मैं तो स्वभाव से रूमान का पुजारी हूँ बल्कि सौंदर्य का पुजारी, इसलिए मेरी शादी—आह मेरी शादी—यह एक लम्बी कहानी है जो कभी आपको फ़ुरसत में सुनाऊँगा । मुझे अपनी बीवी से बहुत मुहब्बत है ।"

एकाएक मेरी निगाह सामने खिड़की पर गई । शायर साहब की बीवी झाँक रही थीं, फ़िज़ूल सी थीं बिल्कुल ।

"बकता है यह शायर ।" मैंने दिल में सोचा ।

"सुबह के धुँधलके में जब चिड़िया गीत गा रही होगी हम सड़कों पर सैर किया करेंगे । दोपहर के वक़्त मैं आपको अपने शेर सुनाऊँगा और शाम को जब सूरज डूब रहा होगा हम बाग़ में सैर करने चला करेंगे और मैं शेर सुनाया करूँगा । रात को फिर मैं आपको अपने शेर सुनाया करूँगा ।"

न पूछिये किस मुसीबत से हमने इस शायर से पीछा छुड़ाया ।

हम लोग एक गली में से गुज़र रहे थे कि एक रंगीन मकान पर नज़र जमकर रह गई जिस पर लिखा था 'किराए के लिए खाली है ।' मकान था भी सड़क पर और बहुत खूबसूरत दिखाई दे रहा था । मालूम हुआ कि चाबियाँ अनारकली में किसी वकील साहब के पास मिलेंगी । पूछते-पूछते वहाँ पहुँचे । अन्दर से वकील साहब निकले । हमने अपना मतलब ज़ाहिर किया । वह बोले, "आप मीटर का किराया फ़ौरन अदा कर देंगे ?"

"जी हाँ", हम बोले ।

"और कुल किराए का आधा यानी आधा किराया पेशगी जमा कर देंगे ?"

"बहुत अच्छा।"

"आप हलफिया बयान करते हैं कि पड़ोस में किसी को तकलीफ नहीं पहुँचायेंगे।"

"नहीं पहुँचायेंगे।"

"आप मकान के अन्दर लगे हुए कानूनों पर अमल करेंगे ?"

हमने सिर हिला दिये।

"आप खुदा को हाज़िर-नाज़िर जानकर कहते हैं कि मकान से किसी तरह का नाजायज़ फ़ायदा तो नहीं उठायेंगे ?"

"नाजायज़ फायदा ?" शायद उनका मतलब ताक-झाँक से था।

"नहीं उठायेंगे साहब।"

"और आप मकान छोड़ने से कम-से-कम एक माह पहले इत्तिला देंगे।"

"हम सब कुछ करने को तैयार हैं।"

"आप सीधे कश्मीरी बाज़ार जाइये। वहाँ रामनाथ हलवाई की दुकान पूछ लीजिए। बिल्कुल उसके सामने रामचरण साहब ऐनक वाले की दुकान है। चाबी वहीं मिलेगी।"

हम दोनों वहाँ पहुँचे। दुकान पर लाला साहब नहीं थे। अलबत्ता उनके लड़के के साथ उनके घर जाना पड़ा जो डब्बी बाज़ार में था। हमें देख कर लाला जी बोले, "साहब मैं मकान पर दुकानदारी पसन्द नहीं करता। कितनी बार लोगों से कह चुका हूँ कि कम-से-कम मुझे घर तो चैन से बैठने दिया करें। ऐनकें और दुकानों से भी मिल सकती हैं।"

हमने उन्हें बताया कि हमें वकील साहब के मकान की चाबी चाहिये। "अच्छा! वकील साहब का मकान। खूब लतीफ़ा है साहब—यह वकील साहब का मकान कब से हो गया। कल तो बिस्तर बगल में दाबकर यहाँ आया था और आज मालिक हो गया। जनाब मकान मेरा है।"

"बहुत अच्छा आपका सही मगर चाबी कहाँ है ?"

"मुझे अच्छी तरह मालूम नहीं। अलबत्ता आप चौबुर्जी जाइये। वहाँ नम्बर पन्द्रह में निरंजीलाल ठेकेदार से चाबी मिल सकती है।"

चौबुर्जी पहुँचते-पहुँचते रात हो गई। वहाँ लाला जी से मिले। वह बोले, "कैसी चाबी ? किसकी चाबी ? आप लोगों को गलतफ़हमी हुई है। मुझे किसी चाबी का पता नहीं है। बेहतर यही होगा कि आप वापस अनारकली जाइये। चाबी वकील साहब के पास ही होगी।"

फिर वापस वकील साहब के पास पहुँचे। उनको पूरी कहानी सुनाई। वह हँसकर बोले, "जनाब चाबी असल में लाला रामचरण के पास ही है। वह आपसे वैसे ही मज़ाक़ कर रहे होंगे।" यह मज़ाक़ की भी एक ही रही।

"तो फिर साहब आप अपना कोई आदमी हमारे साथ भेज दीजिए।" बाक़र साहब ने कहा।

वकील साहब ने दो आदमी हमारे साथ कर दिये। अब चार आदमियों का यह क़ाफ़िला साइकिलों पर रवाना हुआ। एक के पास रोशनी नहीं थी, इसलिए तय हुआ कि आगे-पीछे होकर चलें और अगर कहीं पुलिस वाला हो तो इशारा कर दिया जाए। मतलब यह कि अजीब बेढंगेपन से हम लोग रवाना हुए। कभी कोई कहीं निकल गया है, कभी कोई कहीं किसी को ढूँढ रहा है। बीसियों बार खोए गए और पाए गए। इन दोनों के अन्दाज़ से पता चलता था कि ये लोग चुलबुले से हैं। नतीजा यह निकला कि दोनों ऐसे खोये गए कि घंटे भर की तलाश के बाद भी न मिले। लाला जी के यहाँ पहुँचे तो वह वहाँ भी नहीं थे। फिर वापस अनारकली आये। वहाँ भी कोई न था। खयाल आया कि शायद चौबुर्जी न चले गये हों। वहाँ भी चक्कर लगा आए। एक बार फिर लाला जी और वकील साहब के घरों का चक्कर लगाया। रात के ग्यारह बज गये—न चाबी मिली और न वह कम-बख़्त आदमी। आखिर तंग आकर हॉस्टल लौट आए।

रात का मशविरा किया गया कि कल ऐंग्लो-इंडियन और क्रिश्चियन लोगों की कालोनी में मकान तलाश किया जाए। कम-से-कम वे लोग ऐसी बद-तमीज़ी तो नहीं करेंगे। शायद यह बताने की ज़रूरत नहीं कि रात भर हम कितने परेशान रहे और कैसे-कैसे ख्वाब देखते रहे।

दूसरे रोज़ साहब लोगों के महल्ले की राह ली। वहाँ पहुँचकर देखा तो दुनिया ही बदली हुई थी। बच्चे से बूढ़े तक जिसे देखो बिल्कुल स्याह या जैसे किसी ने ज़बरदस्ती धुआँ लगा दिया हो।

हम दोनों में बहस शुरू हो गई। मैं काले आदमियों की तरफ़दारी कर रहा था और बाक़र साहब उनके जानी दुश्मन थे। आख़िर इस नतीजे पर पहुँचे कि सिर्फ़ एक मकान देखेंगे। अगर पसन्द आ गया तो ख़ैर वरना फ़ौरन वापस।

हम डरते-डरते सामने के मकान में दाख़िल हुए। वहाँ बरामदे में एक काला-कलूटा बच्चा एक पतली-सी छड़ी से एक मोटे खम्भे को ठक-ठक कर रहा था—शायद वह यह सिर्फ़ तफ़रीह की ख़ातिर कर रहा था। इतने में एक मोटी-सी मेम साहिबा निकलीं और अंग्रेज़ी में चिल्लाकर बोलीं, "कितनी बार तुमसे कहा कि इस खम्भे को इतनी बुरी तरह न ठोका करो। किसी दिन यह सारे का सारा मकान सिर पर आ पड़ेगा।"

हमने मकान के बारे में पूछा। उन्होंने इशारे से बता दिया कि वह रहा। हमने शुक्रिया अदा किया। वह मुस्कराईं। उनके दाँत इस तरह चमके जैसे अंधेरी घटा में बिजली चमका करती है। अब जो मकान जाकर देखते हैं तो खड़े-के-खड़े रह गए। एक बिल्कुल बहुत मकान जिसमें शायद दरवाज़ों और दीवारों के सिवा कुछ न था। होगा हज़रत ईसा से भी पहले का। दीवार पर 'तूफ़ाने नूह' के निशान थे। अन्दर जाकर देखते हैं तो सब कुछ टूटा-फूटा हुआ—बिल्कुल उलट-पलट। बाक़र साहब बोले, "कोई ग़लती हुई होगी।"

जेब से अख़बार निकाला, पढ़ा—वही मकान था। वापस लौटने लगे। बाक़र साहब बोले, "चलो अंग्रेज़ों की तरफ़ भी एक बार क़िस्मत आज़मा लें।"

वहाँ पहुँचे। एक अंग्रेज सीटी बजा रहा था। उससे पूछा। उसने जबान को अजीब तरह तोड़ मरोड़ कर जवाब दिया कि हाँ वह सामने रहा। मकान देखा। नीचे होटल था। पड़ोस में सिनेमा था। होटल के सामने बहुत से तांगे खड़े थे। बहुत से लोग जमा थे। दरबानी बोला, "जनाब ऐसे मकान कहाँ मिलते हैं। जरा खिड़की में आ बैठिये और सामने रौनक ही रौनक है। तबीयत घबराई तो फ़ौरन कोट संभाला और झट से सिनेमा में पहुँच गए। कभी जी चाहा तो जल्दी से नीचे होटल में आ बैठे। खान-पान में कोई हरज नहीं है। कोई चीज मँगवाना हो तो बस (चुटकी बजाकर) मिनटों में आ जाती है।"

"और किराया ?"

"दो सौ रुपये।"

हम वापस चलने लगे कि इतने में एक साहब, जो सूट पहने थे, अन्दर आए और बोले, "आप स्टूडेंट मालूम होते हैं। हम आपके लिए रियायत कर सकते हैं।"

"कितनी ?"

"हम ढाई रुपये कम कर सकते हैं।"

"शुक्रिया।"

हम लोग फिर वापस हॉस्टल आ रहे थे। सोचने लगे कि बस इस बार आखिरी हमला किया जाए क्योंकि दो रोज जाया हो चुके थे और इम्तिहान में कुल बीस दिन रह गए थे।

बाक़ी सब जगह देख चुके थे। अब शहर का सिर्फ़ वह हिस्सा बाक़ी रह गया था जहाँ बहुत घनी आबादी थी।

हम दोनों फिर चल खड़े हुए। लोगों से पूछते जा रहे थे कि किसी ने सामने इशारा करके कहा कि ऊपर की मंजिल खाली है। हमने दरवाजा खट-खटाया। खिड़की में एक बच्चा झाँकने लगा। वह चला गया। फिर एक

लड़का आया। इसके बाद एक लड़की आई। वह भी चली गई। कुछ देर के बाद एक औरत आई और उसके बाद एक बुढ़िया और फिर कोई न आया।

हमने फिर दरवाज़ा खटखटाया।

"पिताजी घर में नहीं हैं।" आवाज़ आई।

"हमें पिता जी से कोई वास्ता नहीं। ज़रा तुम में कोई बाहर तो निकलो।"

"आपको कहीं दौलतराम ठेकेदार ने तो नहीं भेजा?" अन्दर से आवाज़ आई। बाकर साहब जल्दी से बोले, "हाँ भेजा है।"

खट से खिड़की बंद हो गई। किस्सा खत्म– लाख आवाज़ें देने पर भी कोई नहीं बोला। आगे चले। छोटी-छोटी तारीक गलियाँ, दोनों तरफ बड़े-बड़े मकान। एक जगह पता चला कि नज़दीक ही एक हवेली खाली पड़ी है। वहाँ जाकर देखते हैं कि बंदर का तमाशा हो रहा है। दरवाज़ों, छतों, मुंडेरों, खिड़कियों—गरज़ कि जहाँ देखो औरतें, मर्द, बच्चे खड़े थे। हम जो वहाँ गए तो दूसरा तमाशा शुरू हो गया। सब-के-सब लगे हमें घूर-घूरकर देखने।

"कितने बदतमीज़ लोग हैं।" बाकर साहब बोले।

मुश्किल से हम भीड़ में से गुज़रे। मकान देखा तो अच्छा था। किराया पूछा।

"अड़तालीस रुपये पाँच आने चार पाई।" मालूम हुआ कि मालिक मकान बनिये थे, लिहाज़ा अपनी आदत से मजबूर थे।

"आप उन्हें कब साथ लायेंगे?"

"हम शाम तक सामान वगैरह ले आयेंगे।" बाकर साहब बोले।

"जी नहीं, आपकी बहू कब आयेंगी?"

"मेरी बहू? क्या मतलब है आपका?"

"आपकी शादी हो चुकी है ना? आप दोनों की?"

"जी नहीं।"

"तो फिर आप तशरीफ़ ले जाइये, यह शरीफ़ों का महल्ला है । यहाँ सब कुनबेदार आदमी रहते हैं । उम्मीद है आप समझ गए होंगे ।"

हम दोनों खिसियाने होकर लौटे । सोचा कि अब किसी ने पूछा तो कह देंगे कि हाँ शादी हो चुकी है । बाक़र साहब ने क़सम खाई कि अगर इस बार भी मकान नहीं मिला तो वापस हॉस्टल चले जाएँगे । कोई एक घंटे की आवारागर्दी के बाद एक खाली मकान का पता चला । मकान तो था अच्छा मगर उसकी चौहद्दी अजीब थी । पड़ोस में एक बेहूदा-सा सिनेमा था, पीछे गधे बँधे थे । हमने पूछा, "ये शोर तो नहीं मचाएँगे ?"

लाला जी बोले, "अव्वल तो गधे हैं ही शरीफ़—मेरा मतलब है बहुत सीधे हैं । सिर्फ़ सुबह और शाम को शोर मचाते हैं । जरा रौनक़ हो जाती है । फिर आप एक हफ़्ते तक आदी हो जायेंगे । यह देखिये सामने पंडाल है । हर तीसरे रोज वहाँ जलसा होता है । यह रही पनवाड़ी की दूकान । उसके साथ ही नाई भी है । यहाँ नीचे दही-बड़े वाला बैठता है ।" लाला जी ने अनगिनत ख़ूबियाँ गिनवा दीं ।

किराया साठ रुपये था । हम सोच रहे थे कि कैसा शरीफ़ है यह शख्स । उसने शादी के बारे में पूछा तक नहीं । बाक़र साहब को जोश आया तो बोल उठे, "और जनाब हम दोनों की शादी भी हो चुकी है ।"

"हाँ मैं तो भूल ही गया था मगर आप दोनों की पत्नी कहाँ हैं ?"

"जी मायके गई हुई हैं । दो-तीन माह में आ जाएँगी ।" मैंने जरा शरमाते हुए कहा ।

"ख़ूब ! और आपकी ?" उन्होंने बाक़र साहब से पूछा ।

"स्वर्गवास हो गया पिछले महीने । तभी तो बेघर होकर फिर रहा हूँ ।"

बाक़र साहब दुःखी होकर बोले । मेरे लिए हँसी रोकना मुश्किल हो गया । उधर लाला जी की आँखों में आँसू आ गए ।

"अजी परमात्मा किसी को बीवी की मौत का ग़म न दिखाए । बस कमर ही टूट जाती है इन्सान की । मैं तो खुद ये दुःख झेले हुए हूँ । कोई बच्चा तो नहीं छोड़ा बिचारी ने ?"

"एक बच्ची थी, वह तीन महीने के बाद परलोक सिधार गई।" बाक़र साहब जैसे रोते हुए बोले।

"आप बहुत दुःखी हैं। आप कौन-से कॉलिज में पढ़ते हैं?"

हमने कॉलिज का नाम बता दिया।

कॉलिज का नाम बताना था कि कहाँ तो लाला जी रोने की कोशिश कर रहे थे और कहाँ एकदम चौंक पड़े।

"माफ़ कीजिए मुझे बहुत अफ़सोस है कि मैं आपको मकान नहीं दे सकता।"

"आख़िर क्यों?" हम हैरान रह गए।

"आपके कॉलिज का एक लड़का यहाँ रहा करता था। वह सामने के मकान से एक उस्तानी को भगाकर ले गया। चार साल से उन दोनों में से किसी का पता नहीं चला। हम नहीं चाहते कि महल्ले में इस तरह की वार-दात कहीं दोबारा हो।"

हमने उस नामाकूल लड़के को कोस डाला।

शाम का वक़्त था। पक्षी अपने घोंसलों की तरफ़ लौट रहे होंगे। इधर हम दोनों ज़मीन पर नज़रें गाड़े हॉस्टल की तरफ़ वापस आ रहे थे। बाक़र साहब शायद यह सोच रहे थे कि किसके जूतों पर ज़्यादा गर्द जमी हुई है। दिल में जो कुछ था सो था ही—वैसे ऊपर से हम दोनों मुस्करा रहे थे।

"सरासर बेहूदगी है यह मकान ढूँढना!" बाक़र साहब बोले।

"बिल्कुल!" मैंने कहा।

हम दोनों हँस पड़े।

वैसे भी सुनते हैं कि अगर सुबह का भूला शाम को वापस आ जाए तो उसे भूला नहीं समझना चाहिए।

सांपमार खां

शौकत थानवी

आखिर यह मान लेने में क्या झिझक है कि साहब हम सांप से डरते हैं और यह कौन-सी बहादुरी है कि सांप से न डरा जाये—चाहे वह किसी दिन आकर चुपके से सूंघ ही क्यों न जाये। यह सच है कि मौत आनी है और जो इस दुनिया में आया है जरूर जाएगा, लेकिन इस पर भी कौन चाहता है कि मौत का खुद पीछा करता फिरे, लेकिन जाने क्या बात है कि मौत से भी कुछ ज्यादा ही सांप से डर लगता है। मानी हुई बात है कि सांप के काटने का ज्यादा-से-ज्यादा यही नतीजा निकल सकता है कि इन्सान मर जाये, लेकिन दिल को कुछ यक़ीन-सा है कि सांप के काटने से इन्सान सिर्फ़ मरता ही नहीं बल्कि कुछ जरूरत से ज्यादा ही मर जाता है। कुछ भी हो, सांप के नाम से रूह कांपती है लेकिन एकाध मौक़े ऐसे भी आते हैं कि इन्सान को बेकार ही अपनी इस क़िस्म की कमजोरियों पर बनावटी पर्दे डालने पड़ते हैं। इसी तरह का एक मौक़ा हमारे सामने भी आ चुका है जिसकी वजह से अच्छी-भली मिली-मिलाई बीवी हाथ से खोनी पड़ी। अपना मज़ाक़ अलग हुआ और खून जिस क़दर सूख गया उस क़दर उसके बाद से अब तक नहीं बन सका।

इसकी तफसील यह है कि एक बड़े रईस खान बहादुर साहब अपनी इक-लौती बेटी के लिए एक मुहज्जब (सभ्य) जानवर की तलाश में थे जो उनकी बेटी का फर्माबरदार शौहर साबित हो सके और उन दिनों यह खाकसार ही उनकी कसौटी पर पूरा उतर रहा था। हुक्म यह था कि साहबजादे आते-जाते रहा करो। हम लोगों में उठो बैठो ताकि तुम हमारे बारे में किसी नतीजे पर पहुँच सको और हम तुम्हारे बारे में कोई अन्दाजा लगा सकें। लिहाजा होता यह था कि जब भी थोड़ा वक्त मिला, बाल-बाल मोती पिरोये, क्रीम और स्नो के रगड़े दिये, सूट पहनकर और अपनी नजर में पूरी तरह सजकर जा पहुँचे खान बहादुर साहब के मकान पर। धीरे-धीरे इस मेल-जोल में बेतकल्लुफी का रंग आने लगा और अब किसी दिन नागा करने का सवाल ही बाकी न रह गया। बात यह थी कि खान बहादुर का महल और दौलत एक तरफ-रहा, उनकी साहबजादी में बेपनाह कशिश (आकर्षण) थी। वह अपनी जगह एक महफिल थीं। हर वक्त उनके पास एक-न-एक हंगामा जरूर रहता था। कभी उनकी खाला (मौसी) की लड़कियाँ, कभी फुफेरी, ममेरी बहनें उन्हें घेरे हुए हैं और वह चहक रही हैं, महक रही हैं। कभी उनकी सहेलियों का जमघट है और जिन्दगी और खुशी हर तरफ से सिमटकर उनके चारों तरफ जमा हो गयी है। रह गये खानबहादुर साहब तो उनकी जिन्दगी का तो मकसद (उद्देश्य) ही यह था कि वह अपनी बेटी को खुश देखें। लिहाजा वह खुद इस चहल-पहल में बराबर का हिस्सा लेते थे। और अब तो हमारी हाजिरी इतनी जरूरी बन गई थी कि अगर किसी मौके पर हम न पहुँच सकें तो इस्तानों से लेकर मोटर तक सभी दौड़ाये जाते थे और कहा जाता था कि आपकी कमी बहुत महसूस की जा रही है।

यही दौर था कि एक दिन जो तीसरे पहर की चाय पर खान बहादुर साहब के यहाँ पहुँचे तो वहाँ रंग ही कुछ और था। ड्राइंग रूम का सारा फर्नीचर और दूसरी चीजें सब बाहर पड़ी थीं। जिसे देखिये वह परेशान दिखाई दे रहा था। किसी के हाथ में हॉकी स्टिक है और घबराया फिर रहा है तो किसी के होठों पर लिपस्टिक है और चेहरे का रंग उड़ा हुआ है। न

वह क़हक़हे हैं न वह चहचहे। "बचाओ! बचाओ" का सा आलम है। पता लगा कि ड्राइंग रूम में एक सांप निकल आया है जिसे किसी अनाड़ी ने इस तरह मारा कि वह चोट खाकर देखते-ही-देखते ग़ायब हो गया और यक़ीन है कि वह ज़ख्मी सांप बदला ज़रूर लेगा। खान बहादुर साहब की साहबज़ादी जो औरों से कम परेशान दिखाई पड़ती थीं, सीधे यह सवाल कर बैठीं, "क्या आप भी सांप से डरते हैं?"

ज़ाहिर है कि इस सवाल के जवाब में वह 'हां' सुनने के लिए तैयार नहीं थीं। नहीं तो यह सवाल ही न करतीं। चुनांचे हमने बड़े इत्मीनान से कहा, "लाहौल वला क़ुव्वत, डरने की क्या बात है भला इसमें?"

यह सुनते ही उनकी आंखों में खुशी की ऐसी चमक पैदा हुई कि हम अपने ठीक जवाब पर झूम उठे। वह कहने लगीं "मेरी समझ में यह नहीं आता कि जब यह तय है कि एक-न-एक दिन मरना जरूर है, और यह भी कि जब तक मौत नहीं आती लाख सांप डसें तो भी कुछ नहीं होता; फिर सांप से इतना डर क्यों?"

उनकी एक खाला (मौसी) की लड़की ने कहा, "कमाल की बातें करती हो तुम पर्वीन! कोई तुम्हारे ऐसा निडर कैसे बन जाये? मेरी तो रूह कांप उठती है सांप के नाम से।"

खान बहादुर साहब जो फ़ुल बूट पहने, हाथ में एक मोटा-सा डंडा लिये फिर रहे थे क़रीब जाकर बोले, "डरने वाली चीज़ से न डरना अक़्लमन्दी की बात नहीं है। इसे मैं बहादुरी से ज़्यादा हिमाक़त कहता हूं। अगर इस वक़्त सांप मारा नहीं जाता तो मुझे रात को नींद नहीं आ सकती।"

पर्वीन ने हंसकर कहा, "डैडी आप तो सचमुच डरते हैं।"

खान बहादुर साहब ने हमसे कहा, "क्या जनाब आप भी सांप से डरने के हक़ में नहीं हैं?'

हमने पर्वीन की आंखों में फिर वही चमक देखने के लिए कहा, "अब तक तो डरने का कभी मौक़ा आया नहीं है हालांकि कई बार सांप सामने आ चुका है।"

खान बहादुर साहब ने अचम्भे से कहा, "सामने आ चुका है ? यानी तुम्हारा मतलब है कि साँप से मुठभेड़ हो चुकी है ? अच्छा फिर ?"

अर्ज़ किया, "फिर क्या, पकड़ा और मार डाला ।"

खान साहब ने तकरीबन चौंक पड़ने के अन्दाज़ से कहा, "पकड़ा ? यानी पकड़ लिया साँप को । यह कैसे हो सकता है ? क्या तुमने खुद पकड़ा है साँप को ?"

कहा, "जी हाँ । आखिर इसमें अचम्भे की कौनसी बात है । साँप को मारने की बेहतरीन तरकीब यह है कि उसको दुम पकड़कर ऐसा झटका दिया जाये कि उसकी कमर की हड्डी टूट जाये । बस ! फिर वह रेंग नहीं सकता है और आसानी से मारा जा सकता है ।"

खान बहादुर साहब ने जल्दी जल्दी पलकें झपकाकर कहा, "यह तुम आखिर कह क्या रहे हो ? दुम भला पकड़ी किस तरह जा सकती है ? मैं तो भला मरे हुए साँप की दुम भी नहीं पकड़ सकता, तुम जिन्दा की बात कर रहे हो ।"

और अब सब के सब हमारे चारों तरफ इकट्ठे हो गये थे और परवीन बड़े गर्व से दिल-ही-दिल में खुश हो रही है कि मेरा होने वाला शौहर वह है जिसमें सच्चा पौरुष है । खान बहादुर साहब ने बाहर पड़े हुए सोफे मैदान में घसीटकर महफिल सजा डाली और जब सब बैठ गये तो परवीन ने यह ज़िक्र फिर छेड़ा, "हाँ, तो आपने बताया नहीं कि दुम किस तरह से पकड़ी जा सकती है ।"

हमने बहुत लापरवाही से कहा, "साहब इसका कोई खास ढंग तो है नहीं, बस ज़रा-सी हिम्मत की ज़रूरत है और हिम्मत के बाद तेज़ी की । मैंने तो हमेशा यह किया है कि साँप दिखाई पड़ा और मैंने लपककर, उसकी दुम पकड़कर कोड़े की तरह पूरी ताकत के साथ झटक दी । बस, उसकी हड्डी टूट जाती है ।"

ख़ान बहादुर साहब ने कहा, "कमाल है साहब ! और शाबाश है तुम्हें । जैसे तुम्हारी नज़र में कोई बात ही नहीं है । जिन्दा साँप पर झपट पड़ना । कमाल है ।"

पर्वीन ने पूछा, 'आपने बड़े-से-बड़ा कितना बड़ा साँप मारा है ?"

हमने कहा, "यों तो गज-गज और डेढ़ गज के तो कई मारे होंगे, लेकिन एक बार एक बड़े ही भयानक साँप से मुक़ाबला हो गया था ।"

ख़ान बहादुर साहब ने डर से चौंक कर कहा, "ऐं ! क्या कहा, नाग ?"

हमने कहा, "जी हाँ बिल्कुल काला नाग ! होगा कोई दो-ढाई गज लम्बा और फन उसका बिल्कुल तवे के बराबर । सड़क के बीचों-बीच कुंडली मारे बैठा फुंकार रहा था ।"

ख़ान साहब अपने मोंढे के साथ क़रीब खिसक आये, "अच्छा, अच्छा ! फिर, फिर क्या हुआ ?"

हमने कहा, "साहब उसे देखकर एक बार ठण्डा पसीना तो मुझे आ गया, मगर मैंने कहा कि अगर अब भागता हूँ तो यह हमला कर देगा और खुद हमला करने को मेरे पास कोई चीज़ नहीं थी। बिल्कुल खाली हाथ था ।"

पर्वीन की खाला (मौसी) की लड़की ने कानों पर हाथ रखकर कहा, "हाय मेरे अल्लाह ! फिर क्या हुआ ?"

हमने कहा, "पहले तो कुछ समझ में न आया कि क्या करूँ ? उसकी दुम की तरफ लपकना बेकार था, इसलिए कि वह तो कुंडली मारे बैठा था ।"

ख़ान बहादुर साहब बोले, 'मेरा दम निकलने के लिए तो यह दृश्य ही काफ़ी था ।"

हमने हँसकर कहा, "जी हाँ बहुत भयानक दृश्य था कि न तो किसी को मदद के लिए बुला सकते हैं, न भाग सकते हैं, न उस पर हमला कर सकते हैं । मैं उसकी आँखों में आँखें डाले खड़ा रहा और चुपके-चुपके अपना कोट उतारता रहा । आखिर में कोट उतार कर जो उसकी तरफ़ उछाला तो वह कोट में उलझकर अपना कुंडल खोलकर जैसे ही मेरी तरफ़ बढ़ा, मैंने लपक-

कर पकड़ी उसकी दुम और एक बड़ा झटका देता हूँ तो तड़ाख से उसकी हड्डी टूट गयी। बस फिर क्या था, मैंने पत्थर मारकर उसका सर कुचल डाला।

खान बहादुर साहब ने इत्मीनान की साँस ली जैसे वह सुनने के इन्तज़ार में थे कि इस लड़ाई में हम मारे गये। पर्वीन ने यह सुनकर कहा, "सच में यह तो बड़ी हिम्मत की बात है।"

हमने कहा, "साहब! उस साँप के मरने की खबर सुनकर आस-पास की बस्तियों के लोगों ने आकर मुझे घेर लिया और मुझे कन्धों पर उठाकर जुलूस की शकल में बस्ती में ले गये क्योंकि उसने बस्ती के बहुत-से लोगों को मौत के घाट उतारा था।"

हम अभी इतना ही कह पाये थे कि भारी भूचाल आ गया। कोई सोफे समेत उलट गया, कोई सोफे के ऊपर खड़ा रह गया। खान बहादुर साहब चीख़ने लगे।

"वह निकला! वह रहा!! जाने न पाये!!!"

और मालूम यह हुआ कि वह ज़ालिम साँप चोट खाकर उसी सोफे की निवाड़ में घुस गया था जिस पर हम बैठे अपने कारनामे बयान कर रहे थे। साँप को देखते ही सारा जिस्म काँपने लगा। हम उछलकर पर्वीन की आड़ में तो आ गये थे। मगर पहले तो वह यह समझी कि हम दुम पकड़ने के लिए पैंतरा बदल रहे हैं लेकिन जब हम उसकी आड में ही खड़े रहे और वह साँप रेंगता हुआ आगे बढ़ा तो वह चीखी, "वह रही दुम, पकड़िये न दुम! और दीजिए झटका!"

यहाँ तक कि उसकी और दूसरे सब लोगों की आवाज़ें हमारे कानों से धीरे-धीरे दूर होती गईं। फिर हमें खबर नहीं कि क्या हुआ। जब होश में आये तो देखा कि खान बहादुर साहब का नौकर हमारे तलवे सहला रहा है और हमारे पैर बर्फ की तरह ठंडे हैं। उसी नौकर से यह मालूम हुआ कि साँप पर्वीन के हाथों मारा गया। और यह खबर सुनकर कि हमारी बेहोशी का ज़िक्र कर-कर के सब लोग हँस रहे हैं, बड़ी शर्मिंदगी हुई। उस बदतमीज़

नौकर ने कहा, "साहब ! आप से अच्छी तो लड़कियां रहीं कि सांप का मुक़ाबिला तो करती रहीं । आपने तो कमाल ही कर दिया कि बेहोश हो गये ।"

हम अपनी बेहोशी की वजह बता न पाये थे कि खान बहादुर साहब आ धमके और व्यंग्य करते हुए बोले, "आ गया होश आपको ? भई इस सांप ने तुम्हारी ही दुम को ऐसा झटका दिया कि कमाल ही हो गया ।"

पर्वीन की खाला (मौसी) की लड़की मुँह पर दुपट्टा रखे हुए आई और हमें देखते ही हँस पड़ी । खान बहादुर साहब ने बड़ी गम्भीरता से कहा, "मैं तो यह समझा था कि सांप ने तुम्हें काट लिया है, मगर जब डाक्टर ने आकर यह बताया कि डर से बेहोश हुए हैं तो कुछ इत्मीनान हुआ ।"

लीजिए, इतनी देर में डाक्टर भी आ चुका था । हम अभी कुछ कहने ही वाले थे कि पर्वीन उधर से गुज़री । वह आगे बढ़ना चाहती थी कि खान बहादुर साहब ने पुकारकर कहा, "अरे भई पर्वीन ! इन्हें होश आ गया है, ज़रा देखो तो सही इन्हें आकर ।"

पर्वीन ने दूर से कहा, "अब रहने भी दीजिए ! गरजने-बरसने का फ़र्क़ देख लिया आज ।"

खान बहादुर साहब ने कहा, "अरे भई, आओ तो सही इधर, ज़रा देखो तो इन्हें । हल्दी फिरी हुई है चेहरे पर । इन्हें कुछ पिलवाओ फ़ौरन ।"

अब हम कहां तक चुप रहते । बड़ी मुश्किल से कहा, "कुछ समझ में नहीं आता कि एकाएकी मुझे हुआ क्या था ?"

पर्वीन की खाला की लड़की ने हँसकर कहा, "होता क्या ? डर गये थे ।"

हमने कहा, "खैर, डरने की तो कोई बात नहीं थी । हां, यह हो सकता है कि उसी सोफ़े से जो सांप निकला तो एकदम मुझ पर कुछ डर का असर हो गया ।"

पर्वीन ने क़रीब आते-आते फिर एकदम वापस जाते हुए कहा, "कहने और करने में बड़ा फ़र्क़ है ।"

खान बहादुर ने बहुत सफाई से कहा, "जब यह अपने किस्से सुना रहे थे मुझे तो उसी वक्त इनकी सचाई में शक था। अगर यह कह देते कि मैं साँप से डरता हूँ तो मैं ज्यादा खुश होता कि बेचारा सच तो बोल रहा है।"

खैर, उस दिन तो जो हेटी हुई वह तो तकदीर में बदी थी, लेकिन पर्वीन की नजर से वह नफरत फिर कभी न जा सकी जो उस घटना के बाद पैदा हुई थी। यहाँ तक कि जब उसकी शादी एक मेजर साहब के साथ हो गई तो उसने अपने शौहर से मुझे मिलाते हुए कहा, "आप से मिलिये ! आप वक्त के सबसे बड़े तीस मार खाँ हैं, बल्कि साँपमारखाँ।"

क़िस्सा पहले दर्वेश का

ए० हमीद

पहले दर्वेश ने दूसरे दर्वेश की दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए सिग्रेट सुलगाया और अपना क़िस्सा शायद ग़ालिब के इस शेर से शुरू किया :

अच्छे ईसा हों मरीज़ों का ख़याल अच्छा है ।
वह अलग बांध के रक्खा है जो माल अच्छा है ।।

तीनों दर्वेश इस शेर पर वाह-वाह करते हुए उठे और पहले दर्वेश का सिर झूमने लगा । पहले दर्वेश की पगड़ी खुल गई । उसने पगड़ी बांधते हुए आंखों में आंसू लाकर कहा :

"भाइयो ! इस गुलाम नाचीज़ की कहानी बहुत दुःख भरी है, इतनी दुःख भरी कि पत्रिका "शाम सवेरा" के सम्पादक ने उसे सिर्फ़ इसलिए छापने से इन्कार कर दिया कि उसे पढ़कर कातिब के आंसू नहीं थमते थे । मेरी कहानी एक ऐसे शहर के रेलवे स्टेशन से शुरू होती है जो हमसे थोड़ी दूर हमारे इर्द-गिर्द फैला हुआ है । मैं पहली बार इस शहर में दाखिल हुआ तो शरीफ़ आदमियों के लिबास में था, इसलिए स्टेशन पर ही पकड़ लिया गया और जेलखाने में डाल दिया गया । दूसरी बार मैं गिरहकट के वेश में पहुँचा

तो मेरी खूब भाव-भगत और आव-भगत हुई। लोगों ने मुहब्बत से बेकरार होकर मेरे गले में इतने हार डाले कि मेरा चेहरा उनमें छुप गया और जब मेरा चेहरा छुप गया तो एक आदमी ने श्रद्धा से अभिभूत होकर मेरी दोनों जेबें काटीं और उनमें से होटलों के बिल निकालकर ले गया। एक और आदमी भीड़ को चीरता हुआ मेरी तरफ बढ़ा, पास आकर उसने अपने रूमाल से मेरी दाहिनी मूँछ झाड़ी और उस पर एक बोसा दिया और जेब में समोसा निकालकर खाने लगा।

मैंने पूछा :

"भाई यह बोसा और समोसा क्या हुआ ?"

इस पर वह आदमी यों बोला :

"वही जो गमजा और गुजब गमजा होता है।"

मैं दिल-ही-दिल में इस आदमी की अक्ल पर दंग रह गया। इतने में लोग मुझे धकेलते हुए स्टेशन से बाहर ले आए। बाहर आकर इनमें से हरेक ने मुझ से बारी-बारी हाथ मिलाया और मेरे गले से अपना-अपना हार उतारकर चलते बने।

एकाएक एक तांगा मेरे पास से गुज़रा जिसे देखकर मेरे हाथों के तोते उड़ गए—इसलिए कि उसकी पिछली सीट पर एक लम्बे मुँह वाला घोड़ा हाशियों वाला पीला रूमाल सिर पर बाँधे, ऐनक लगाए अखबार पढ़ रहा था। मैं हैरान हो रहा था कि "या इलाही मिट न जाए दर्दे दिल"--यह मैं कौन से शहर में आ गया हूँ।

खैर, तो मेरे भाइयो ! मैं वहाँ से एक बाजार की तरफ चल पड़ा। एक जगह मुझे कुछ भीड़ नजर आई। पास जाकर क्या देखता हूँ कि एक कुत्ता जमीन पर अध-मरा-सा लेटा है और उसकी टाँग में से खून बह रहा है। पता करने पर मालूम हुआ कि एक आदमी ने काट खाया है। वहाँ तीन-चार कुत्ते खड़े थे। एक कुत्ते ने कान में उँगली फेरते हुए दूसरे कुत्ते से कहा।

"इन्हें फ़ौरन टीके लगवाने चाहिएँ ।"

इतना सुनकर मैं चुपके से एक तरफ़ खिसक गया क्योंकि मेरे आस-पास बहुत आदमी खड़े थे ।

जिस बाज़ार से मैं गुज़र रहा था वहाँ काफ़ी रौनक़ थी । दोनों तरफ़ की दुकानें ख़ूबसूरत और ख़ूब सजी हुई थीं । चूँकि रमज़ान शरीफ़ का महीना था, इसलिए लोग भारी संख्या में होटलों में दाख़िल हो रहे थे । एक बहुत बड़े होटल के दरवाज़े पर छोटा-सा बोर्ड लटक रहा था जिस पर मोटे अक्षरों में लिखा हुआ था :

"यह होटल रमज़ान शरीफ़ के सम्मान में बन्द है ।

नोट :—खाना खाने के लिए पिछली गली से तशरीफ़ लाएँ ।"

मैं अभी बोर्ड पढ़ ही रहा था कि पास की दुकान में से दो नंग-धड़ंग आदमी भागते हुए निकले और सामने वाली गली में ग़ायब हो गए । मैंने गौर से देखा तो दुकान के माथे पर लाल अक्षरों में लिखा था :

"यहाँ भागते चोरों की लंगोटियाँ बिकती हैं ।"

मैं वहाँ से भागने ही लगा था कि अचानक मुझे अपनी लंगोटी का खयाल आ गया और मैं पहले से भी ज्यादा आहिस्ता चलने लगा । कुछ दूर चलने पर मैंने देखा कि दो आदमी किसी बात पर बड़ी गरमागरमी से झगड़ा कर रहे थे । एक आदमी दूसरे से कहने लगा :

"मैं तुम्हारी ईंट-से-ईंट बजा दूँगा ।"

दूसरे आदमी ने बड़ी लापरवाही से कहा :

"देख लूँगा जब तुम ईंट-से-ईंट बजाओगे ।"

इस पर पहले आदमी ने आगे बढ़कर सड़क पर से दो ईंटें उठाईं और उन्हें हाथों में लेकर धीरे-धीरे बजाने लगा । इसके बाद उसने अपने हाथ झाड़े और एक तरफ़ चल पड़ा । बस फिर क्या था, दूसरे लोग हाथ झाड़कर उसके पीछे पड़ गए । इसी भीड़ में अचानक एक कम उम्र लड़का एक बुज़ुर्ग-सूरत आदमी को कान से पकड़कर खींचता हुआ बाहर निकाल लाया और आँखें लाल करते हुए गरजा ।

"अब्बा जान ! मैंने आपसे कितनी बार कहा है कि दोपहर के वक्त घर से बाहर न निकला करें, मगर आप सुनी-अनसुनी कर देते हैं ।"

उस बुजुर्ग आदमी ने मुँह लटकाकर और काँपते हुए कहा :

"बेटा जान ! मैं तो अखबार लेने आया था ।"

लड़के ने कान छोड़कर अपनी कमीज़ का कालर ठीक किया और कहा :

"अब सीधे घर जाइये और अब स्कूल का सबक याद कीजिये—माई गुडनैस ! कैसे माँ-बाप से पाला पड़ा है ।"

मेरे भाइयो ! मैं कसम खाकर कहता हूँ कि मैं हैरान होकर रह गया और वहाँ से जल्दी-जल्दी भाग निकला । आगे बड़े चौक के बीच में एक खूबसूरत फुहारा लगा था जिसमें से पानी तड़प-तड़प कर बाहर उछल रहा था । फुहारे के नीचे एक परिंदा बैठा था जो अपने परों पर पानी नहीं पड़ने देता था । उसके ऊपर एक और परिन्दा दरख्त की डाली पर बैठा था । तराज़ू उसके हाथ में था और वह पलड़ों में पर डाले उन्हें तोल रहा था । फुहारे की दाहिनी तरफ मैंने हरी-हरी घास पर एक बड़े ही प्यारे और मासूम गुड्डे से बच्चे को देखा जो छोटे-छोटे खिलौनों से खेल रहा था और खुद-ब-खुद हँस रहा था । बच्चा मुझे इतना प्यारा लगा कि, मैं जो कभी बच्चों को प्यार नहीं करता, उसके पास जाकर बैठ गया । मैंने बड़ी मुहब्बत से उसकी ठुड्डी को उंगली से छूते हुए कहा :

"हलो बेबी ! हलो स्वीट बेबी ! हलो किडी ! बिस्कुट खाओगे ?"

बच्चे ने अचानक खिलौने हाथ से रख दिये, नेकर की जेब से सायन्टेरी फ्रेम वाली ऐनक निकालकर आँखों पर लगाई और मुझे घूरते हुए भारी आवाज़ में बोला :

"मिस्टर ! मुझसे बे-तक्ल्लुफ होने की कोशिश न करो ।"

ऐ अल्लाह के दर्वेशो ! इतना सुनना था कि मेरी पगड़ी उछलकर मुझ से दूर जा गिरी । जब मैं वहाँ से भागने लगा तो बच्चे ने ठंडी आह भरकर यह शेर पढ़ा :

किसीने मैंके बतलाया गया हूँ,
मैं शुद्ध "गाया" नहीं "खाया" गया हूँ।

मेरे हवास अभी अपने ठिकाने पर नहीं आये थे। मैं उन्हें ठिकाने पर लाने के लिए एक बेंच पर जाकर बैठ गया। जब मेरे हवास ठीक हुए तो क्या देखता हूँ कि मेरे पास ही पगड़ी बांधे हुए एक बूढ़े बुज़ुर्ग बैठे हैं और कुछ पढ़ रहे हैं। उनका मुँह किताब से ढंका हुआ था। मैंने सोचा कि चलो इन से ज़रा दो-दो बातें ही कर लें। मैंने गला साफ़ करते हुए कहा :

"क्यों साहब, आज मौसम कैसा है ?"

दूसरी तरफ़ से कोई जवाब न मिला। मैंने कान साफ़ करते हुए अपना सवाल फिर दोहराया। वह फिर उसी तरह चुप रहे। तीसरी बार सवाल करने पर वह बुजुर्ग किताब चेहरे से हटाकर मुझे गुस्से-भरी निगाहों से घूरने लगे। उन्हें देखकर मेरे बेंच के पांव तले से जमीन निकल गई क्योंकि वह बुजुर्ग मुँह में चुसनी लिये जल्दी-जल्दी शहद चूस रहे थे। मैं वहां से सिर पर जूते रखकर भागा और शहर की सबसे बड़ी सड़क पर आकर दम लिया लेकिन यहां आकर अजीब ही तमाशा देखा। चौक में ट्रैफ़िक का सिपाही बे-शुमार साइकिल सवारों के बीच में खड़ा उनका चालान कर रहा था। धूप अच्छी तरह निकली हुई थी, फिर भी इन लोगों का सिर्फ़ इसलिए चालान हो रहा था कि वे सुबह के वक़्त बग़ैर बत्ती के साइकिल चला रहे थे। एक कोचवान मेरी पगड़ी देखकर तांगा मेरे पास लाकर बोला :

"दाता के दरबार चलियेगा जनाब ?"

मेरे इन्कार करने पर कोचवान बोला :

"सरकार पलक झपकने में पहुँचा दूँगा। पन्द्रह हार्स पावर का घोड़ा है।"

मैंने डरकर घोड़े की तरफ़ देखा। घोड़े ने गर्दन घुमाकर मुझे देखा और नाक चढ़ाकर बोला :

"झूठ बकता है। मैं सिर्फ़ एक हार्स पावर हूँ।"

जैसे-जैसे शाम हो रही थी मेरे दर्वेश भाइयो वैसे-वैसे मुझे फ़िक्र हो रही थी कि रात कहाँ गुज़ारी जाए। घूमते-घूमते मैं शहर की चारदीवारी में आ गया। वहाँ एक जगह क़व्वाली हो रही थी, तबले बज रहे थे और क़व्वाल झूम-झूम कर यह दोहा बार-बार पढ़ रहे थे

इक माजरा सुनाता हूँ मैं हुस्नो इश्क़ का
"लैली" का एक आशिक़ दीवाना क़ैस था
बादे फ़ना पे दोनों के मर्क़द जुदा-जुदा
लेकिन वह दोनों क़ब्रों से आती थी यह सदा
क्या ?
तेरे मुखड़े पे काला-काला तिल वे
वे मुंडिया सियालकोटिया !

पहले क़व्वाल उठे तो एक और क़व्वाल साहब आए जो टेलर मास्टर थे। उन्होंने बैठते ही गाना शुरू कर दिया :

मैंने लाखों के कोट सिये सितमगर सिरे लिये !

इस पहले ही मिसरे से लोग इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने उठकर नाचना शुरू कर दिया और अपने-अपने कोट फाड़ डाले। दरज़ी क़व्वाल के शागिर्द आगे बढ़े और देखते-ही-देखते सारे कोट जमा करके ले गए। मैंने अपने कोट के बटन बंद किये और आगे चल पड़ा।

ऐ मेरे प्यारे चौथे दर्वेश ! इससे पहले कि मैं कहानी का आख़िरी हिस्सा बयान करूँ, तू अपनी वास्कट के अन्दर की जेब में अपना दाहिना हाथ डालकर बगले का एक सिग्रेट निकालकर पिला।

इस पर चौथे दर्वेश ने रोनी सूरत बनाते हुए बगले का सिग्रेट निकाला और पहले दर्वेश को दिया।

बगले के सिग्रेट का कश खींचकर पहला दर्वेश एक टाँग पर खड़ा हो गया और अपनी कहानी सुनाने लगा।

"भाइयो ! शाम हो चुकी थी। मैंने कहीं से सुन रखा था कि इस शहर में शाम के वक़्त ख़ुशहाल लोग दस्तरख़ान पर खाना चुनकर मेहमानों को

तलाश में गलियों में चक्कर लगाया करते हैं । चुनांचे इसी उम्मीद में मैं भी गलियों में घूमने लगा । एक गली का मोड़ मुड़ते हुए अचानक किसी ने मेरे मुँह में कपड़ा ठूँसा और दो आदमी मुझे उठाकर किसी होटल में ले गए । कुर्सी पर बिठाकर एक ने पिस्तौल निकालकर बाहर रख दिया और बाक़ी दोनों आदमी कुर्सियाँ खींचकर मेज़ के गिर्द बैठ गए । एक ने कहा :

"हमें खाना खिलाओ या हमारी गोलियाँ ठंडी करो ।"

मैं सन्नाटे में आ गया । उन्होंने इस दौरान में तरह-तरह के खानों का आर्डर दिया और खा-पी कर बिल मेरे हवाले करके चलते बने । मैंने उठते हुए बिल होटल के मैनेजर के हवाले कर दिया और होटल के मैनेजर ने मुझे पुलिस के हवाले कर दिया और पुलिस मुझे हवालात में ले गई । संयोग देखिये कि अचानक मुझे ख़याल आया कि मेरी टोपी में एक क़ीमती पत्थर जड़ा हुआ है । उसे बेचकर मैंने जौहरी से साढ़े ग्यारह रुपये वसूल किये । पाँच रुपये हवालात के दारोग़ा को दिये, पाँच रुपये से उन लोगों का बिल अदा किया जो मेज़बान की तलाश में रात को गलियों में घूमा करते हैं और बाक़ी पैसे जेब में डालकर पाक टी हाउस में जा बैठा और चाय पीने लगा ।

मेरे बिल्कुल सामने एक लम्बी नाक वाला आदमी प्लेट में बर्फ़ डाले उसके साथ रोटी खा रहा था । एक और आदमी आइसक्रीम में खीरे के क़तले डाल कर पी रहा था । बची हुई आइसक्रीम उसने अपने बटुए में डाली, बूट के तसमे खोलकर रुपये का नोट निकाला, बिल पर दस्तख़त किये और होटल से बाहर निकल गया । एक नौजवान लड़का चाय की प्याली सामने रखे ज़ार-ज़ार रो रहा था और बार-बार ऐश ट्रे उठाकर उसमें आँसुओं की बूँदें गिरा रहा था । सिग्रेट अभी ख़त्म भी न हुआ था कि उसने उसे चाय के प्याले में डालकर बुझाया । इधर-उधर देखकर ऐश ट्रे जेब में डालकर होटल से बाहर निकल गया । जहाँ वह बैठा था, उसके ठीक ऊपर लिखा था :

"मेहरबानी करके सिग्रेट प्यालों में मत बुझाइये और अगर आप ऐसा करने पर मजबूर हैं तो बेरे को कहिये कि चाय ऐश ट्रे में लाए ।"

मैं उठने ही वाला था कि दो गंजे सिरों वाले सुकरात टाइप आदमी अन्दर आए। मेज़ के गिर्द बैठकर उन्होंने एक प्लेट बकरी के मग़ज़ का आर्डर दिया और जब मग़ज़ आया तो बड़ी ख़ामोशी से मग़ज़ खाने लगे। इस होटल से बाहर निकलकर मैंने सोचा कहाँ जाऊँ? किधर जाऊँ? दो शायर मेरे पास से गाते हुए गुज़र गए :

मन का पंछी बोल उठा है।
बोल सजन तेरी जेब में क्या है?—जेब में क्या है?
मेरी जेब की बात न पूछो
हाय कोई पैसा नहीं।
....

अब मेरे सामने कोई मंज़िल न थी। चुनांचे मैंने यूँही बिना किसी उद्देश्य के घूमना शुरू कर दिया। मिसरीशाह के सामने बाग में मुझे पुलिस के दो सिपाहियों ने रोक लिया।

"कौन हो तुम?"

मैंने कहा, "पहला दर्वेश।"

मेरा इतना ही जवाब सुनकर वे मुझे पकड़कर थाने ले गये और आवारागर्दी के जुर्म में मुझे हवालात में बन्द कर दिया गया। इस हवालात में मेरी मुलाक़ात एक ऐसे आदमी से हुई जो ख़ून करने के जुर्म में वहाँ रात-भर के लिए रखा गया था। उसके ख़िलाफ़ इलज़ाम यह था कि उसने एक आदमी से नेकी की थी और फिर उस आदमी को दरिया में डाल दिया था।

रात-भर मैं उस आदमी से डरकर एक कोने में दुबका बैठा रहा और वह आदमी चीख़-चीख़ कर पुकारता रहा।

"नेकी कर दरिया में डाल।"

ख़ुदा-ख़ुदा करके सुबह हुई और पुलिस वालों ने मुझे छोड़ दिया। मैं बाहर निकलकर क्या देखता हूँ कि मेरे पीछे दुम निकल आई है। मैंने जल्दी से उसे दबाया और स्टेशन की तरफ़ भाग उठा। कहीं गाना हो रहा था :

मेरी गठरी को भागा चोर
मुसाफ़िर भाग ज़रा।
....

चोर हाँ, मेरे दरवेश भाइयो! अब मैंने इस तकिये में आकर दम लिया है और खुदा ने चाहा तो इसी जगह दम दूँगा।"

यह क़िस्सा सुनकर दो दरवेश तो एक-दूसरे का मुँह देखने लगे और तीसरे दरवेश ने उछलकर कहा।

"भाई! खुदा के लिए मुझे यह क़िस्सा लिखकर दे दें। मैं नया-नया अख़बार का एडिटर हुआ हूँ।"

होना ख़त्म पहले दरवेश के क़िस्से का।

दिमाग चाटने वाले

इबराहीम जलीस

मेरे मिलने वालों की कोई संख्या नियत नहीं है मगर उनमें से कुछ ऐसे हैं जिनके बारे में रह-रह कर मुझे खयाल आता है कि काश ! उनसे मेरी मुलाकात न होती या काश ! अब उनसे सम्बन्ध-विच्छेद हो जाए। यह ज़रूर है कि पहली बार जब मैं किसी से मिलता हूं तो स्वभाववश यह ज़रूर कह देता हूँ कि मुझे आपसे मिलकर बहुत खुशी हुई। यह वाक्य बिल्कुल औपचारिक है और इसके अर्थ और महत्व पर ध्यान दिये बिना ही यह वाक्य मुँह से अपने आप ही निकल जाता है लेकिन इसका यह मतलब तो नहीं कि इस वाक्य से अनुचित लाभ उठाया जाए और इसलिए बार-बार भेंट की जाए कि पहली बार मुझे उनसे मिलकर बड़ी खुशी हुई थी। वैसे अब मैं सच-सच बता दूँ कि अब तो इन मिलने वालों से मिलकर मुझे बहुत कोफ़्त होती है। जी चाहता है कि ज़रा ढीठ बनकर, ज़रा बेमुरव्वत होकर साफ़-साफ़ कह दूँ कि मैं आप से हर्गिज़ नहीं मिलना चाहता। मुझे आप से मिलकर न पहली बार कोई खुशी हुई थी और न अब हुई है और न आगे

कमी हो सकती है। मैं बड़ी विनम्रता से प्रार्थना करता हूँ कि मुझे माफ़ कीजिए और भगवान के लिए मेरा पीछा छोड़िये।

लेकिन क्या अब मैं ऐसा कह सकता हूँ? नहीं, नहीं, शायद मैं ऐसा नहीं कह सकता। मैं लाख कोशिश करूँ तब भी ऐसा नहीं कह सकता क्योंकि मुझ में वह नैतिक साहस ही नहीं है जिसकी हर महापुरुष ने शिक्षा दी है और जो सृष्टि के आरम्भ से आज तक (पैगम्बरों और असाधारण व्यक्तियों को छोड़ कर) किसी इन्सान में पैदा न हो सका। इस संसार में नैतिक साहस को उतना महत्व प्राप्त नहीं है जितना कि नैतिक कायरता को प्राप्त है। नैतिक कायरता के लिए दिल-गुरदे की जरूरत नहीं। अलबत्ता नैतिक साहस रखना बड़े दिल-गुरदे का काम है। लेकिन चूँकि मेरे दिल-गुरदे बहुत कमज़ोर हैं और स्वभावतः आरामतलब भी हूँ, इसलिए मुझ में नैतिक साहस आ ही नहीं सकता। अतः हर जैद, बकर, उमर से पहली मुलाक़ात में बेखटके यानी बग़ैर सोचे-समझे कह देता हूँ कि मुझे आपसे मिलकर बड़ी खुशी हुई।

मगर इन्साफ़ से आप कहिये कि सैयदशाह ज़ियाउलहसन से मिलकर सही अक़्ल और दिमाग़ रखने वाले किसी इन्सान को खुशी हो सकती है?

मुझे अपने दोस्त मोहम्मद रियाज़ख़ाँ पर बहुत गुस्सा आता है जिसने एक शुभ या अशुभ दिन सैयदशाह ज़ियाउलहसन से मेरा परिचय कराया। यह कोई मज़ाक़ नहीं बल्कि एक खुली हुई सचाई है कि जिस दिन भी सैयदशाह ज़ियाउलहसन से किसी आदमी का परिचय होगा वह दिन उस आदमी के लिए अवश्य एक अशुभ दिन होगा। चुनांचे मेरी ज़िन्दगी में अब इस अशुभ दिन के अलावा दिन प्रतिदिन अशुभ घड़ियाँ बढ़ती जा रही हैं क्योंकि सैयद शाह ज़ियाउलहसन रोज़-रोज़ मुझसे मिलता है। मैं जितना उससे दूर भागता हूँ वह उतनी ही तेज़ी से मेरी तरफ़ दौड़ता है, मुझे पकड़ लेता है और मुझे हार मानकर दाँत खोलकर मुस्कराना पड़ता है और फिर मैं पूछता हूँ—"ओह! सैयदशाह ज़ियाउलहसन साहब! कहिये अच्छे तो हैं?" अब फिर कुछ न पूछिये। सैयदशाह ज़ियाउलहसन की ज़बान चलने लगती है तो फिर घंटों चलती रहती है, रुकने का नाम ही नहीं लेती। आप

बैठिये और अपने धीरज का इम्तिहान देते रहिये। परिणाम-स्वरूप विफलता आपको या मुझे ही होगी, सैयदशाह जियाउलहसन कभी विफल नहीं हो सकता।

वह इस भ्रम में है कि चूँकि वह दो-दो, तीन-तीन घंटों तक बिना थके बात कर सकता है और सुनने वाले चुपचाप उसकी बातें सुनते रहते हैं तो निस्सन्देह उसकी बातें बहुत दिलचस्प होती हैं। तभी तो लोग अपने दिल के चाव को देखने की बजाय पूरे ध्यान के साथ उसकी बातें सुनते रहते हैं। सैयदशाह जियाउलहसन कभी यह जानने या महसूस करने की कोशिश नहीं करेगा कि आप किस मूड में हैं। वह इसकी परवाह कभी नहीं करेगा कि आपको बुख़ार या आपके सिर में दर्द है या आप अपनी प्रेमिका का बेचैनी से इन्तज़ार कर रहे हैं। वह तो इस भ्रम में है कि वह बड़ा दिलचस्प बातूनी या एक अच्छा मजलिसी आदमी है। इसीलिए वह बातें शुरू कर देता है—हर क़िस्म की बातें, हर विषय की बातें, ईरान की बातें, तूरान की बातें, मुहमल बातें, बेकार बातें। जियाउल-हसन बातें-हीबातें करता रहता है मगर नज़दीक से ध्यानपूर्वक देखने पर भी पता नहीं चलता कि वह बातें नहीं कर रहा बल्कि जिससे बातें कर रहा है उसका दिमाग चाट रहा है।

मैं मानता हूँ कि आदमी के मुँह में ज़बान इसीलिए जड़ दी गई है कि वह बातें करे। बातें करना किसी भी तरह से अमानवीय हरकत नहीं मगर मुझे यह कहने में ज़रा भी संकोच नहीं कि दिमाग चाटना अवश्य एक अमानवीय हरकत है।

जियाउलहसन जब कभी मिलता है तो पहले यह ज़रूर कह देता है कि "नहीं-नहीं, कोई खास बात नहीं। बस, इधर से गुज़र रहा था, सोचा तुमसे दो-एक मिनट के लिए बातें करता चलूँ।"

अब सुनिये उसकी दो-एक मिनट की बातें।

'अरे भई! कुछ सुना तुमने—अभी-अभी एक बहुत दुःखद घटना हुई। वह मोहनलाल है ना—चलती मोटर से गिर पड़ा। बेचारे को बड़ी सख्त चोट आई।"

कि [illegible] ?"

[illegible] नहीं [illegible] । [illegible] मोहम्मद [illegible] जिंदगी और [illegible] [illegible]

[illegible] ज़िन्दगी में [illegible] हुसैन में और [illegible] क़ासिम तबला [illegible] कि एक बार उन्हें एक बड़े रईस का तबला [illegible] इनकार कर दिया था [illegible] ने दुकान के बाहर [illegible] से कहा था :

"ए मियाँ तबले वाले, इधर आओ, [illegible] कहना है।"

मोहम्मद क़ासिम में आत्म-सम्मान था। उसने [illegible] दुकान में ही बैठे-बैठे कहा, "गरज पड़ी है तो मोटर से उतरकर यहाँ आओ वरना अपना रास्ता नापो"—यह है आत्म-सम्मान— [illegible] है, आज़ाद पेशा है। [illegible] भला किसी रईस से क्यों दबे। वह तो [illegible] अरे भाई [illegible] खड़े हो गए। अमाँ यार बैठो—कहाँ जा रहे हो, बैठो भई बैठो।"

१. आधा हकीम जान के लिए खतरनाक होता है।

मगर मैंने जवाब दिया कि मुझे साढ़े ग्यारह बजे एक साहब से मिलना है। माफ़ करना जियाउलहसन, मैं मोहम्मद कासिम तबलची के आत्म-सम्मान की कहानी पूरी तरह न सुन सका मगर क्या करूँ, मजबूरी है। ठीक साढ़े ग्यारह बजे उन साहब से मिलना जरूरी है और अब ग्यारह बजने में पंद्रह मिनट बाकी हैं। अच्छा फिर मुलाकात होगी।

इसके बाद मैं वहाँ से सिर पर पाँव रखकर भागता हूँ। यह बिलकुल झूठ है कि साढ़े ग्यारह बजे मुझे किसी साहब से मिलना है मगर यह बिलकुल सच है कि मुझे जख्मी मोहनलाल या उनके विनोदी मामा स्वर्गीय डिप्टी दया नारायण या छोटे-छोटे बच्चों वाले स्वर्गीय कमरुद्दीन या डाक्टर फारुकहुसैन भूतपूर्व प्रोफ़ेसर और तबला मर्चेंट से कोई दिलचस्पी नहीं है। मोहनलाल, जिसे मैं जानता तक नहीं, भई अगर मोटर से गिर पड़ा तो मैं क्या करूँ? डिप्टी दयानारायण बड़े हँसमुख और विनोदी व्यक्ति थे तो यह होंगे। कमरुद्दीन की मौत बहुत दुःखदायी थी तो भई उसकी मौत में मेरा क्या दखल? डाक्टर फारुक हुसैन ने इस्तीफ़ा दे दिया तो मेरा क्या बिगड़ा। मोहम्मद कासिम तबले वाले में अगर आत्म-सम्मान है तो हुआ करे। मुझे उनसे तबला दुरुस्त नहीं कराना है।

मुझे सिर्फ़ अकेले जियाउलहसन ही से शिकायत नहीं है बल्कि जियाउल हसन के सारे भाइयों से शिकायत है। मेरा मतलब जियाउलहसन के सगे या रिश्ते के भाइयों से नहीं है बल्कि जियाउलहसन के पेशे के भाइयों यानी जियाउलहसन की तरह दिमाग-चाटू लोगों से है। दिमाग चाटना न सिर्फ़ एक पेशा है बल्कि उसकी गिनती ललित कलाओं में भी होती है।

सैयद शाह जियाउलहसन के एक पेशे के भाई अबुलफ़ज़ल साहब हैं। यह अबुलफ़ज़ल साहब किसी जिले की एक तहसील के पेशकार हैं। अपनी किसी-न-किसी कार्यवाही के सिलसिले में हर हफ़्ते-दो हफ़्ते पर शहर आते रहते हैं और जब भी मुझसे मिलते हैं तो पहला सवाल यह करते हैं :

"मियाँ तुम कब आए?"

मैं जवाब देता हूँ, "जी मैं तो यहीं हूँ। बहुत दिनों से यहीं रहता हूँ। मैं तो पाँच साल से किसी छोटे से सफ़र पर भी नहीं गया।"

वह कहते हैं, "ओह! वह शायद आपके भाई हैं जो बम्बई में हैं?"

मैं कहता हूँ, "जी मेरे तो कोई भाई बम्बई में नहीं हैं।"

वह झुँझलाते हैं, "अरे कोई थे ना मियाँ तुम्हारे बम्बई में?"

अब मैं उनसे किस तरह बहस करूँ। इसलिए झूठ मूठ कहना पड़ता है:

"अच्छा! आप साबिद हुसैन को पूछ रहे हैं। जी वह तो बम्बई में फ़िल्म डेरेक्टर बन गये।" (हालाँकि साबिद हुसैन तो यहीं हैं और यहीं एक दफ़्तर में नौकर हैं)। वह खुश होकर कहते हैं, "हाँ मैंने कहा था ना। अच्छा अब आप क्या कर रहे हैं?"

जी तो चाहता है कह दूँ, झक मार रहा हूँ मगर चूँकि वह मेरे बुजुर्गों के मिलने वालों में से हैं इसलिए जवाब देता हूँ, "जी, एक अखबार का एडीटर हूँ।" फ़रमाते हैं, "अखबार के एडीटर हो! खूब, अच्छा आजकल अखबारों में क्या छप रहा है?" ऐसे सवाल के बाद अपना और उनका जी एक कर देने को चाहता है मगर इन्सान एक विवश प्राणी है और वह न सिर्फ़ तह-सील के पेशकार हैं बल्कि मेरे बुजुर्गों के मिलने-जुलने वाले भी हैं।

वह जब कभी अपनी तहसील से शहर आते हैं तो ये सवाल हर बार दोहराते हैं और दो-तीन घंटे तक बराबर दिमाग़ चाटते रहते हैं मगर परसों मैंने उन्हें बड़ा चकमा दिया। वह शहर आये थे। एकाएक आबिद रोड पर नज़र आ गये। मैं साइकिल पर जा रहा था। मुझे देखकर पुकारा. "मियाँ अरे ठहरो ठहरो, बात तो सुनो।" मगर मैंने बिलकुल अनजान होकर पैंडिल तेज किये और नाम पली सड़क पर मुड़ गया हालांकि मुझे मुअज़्ज़म जाही मार्कॅट जाना था।

जियाउलहसन के तीसरे भाई हमारे एक पड़ोसी बुजुर्ग भी मालगुज़ारी के महकमे के पेंशन पाए हुए कर्मचारी है। उन्हें बुढ़ापे की वजह से ज़ल्दी नींद नहीं आती। इसलिए वह सारा वक़्त, जिसमें उन्हें नींद नहीं आती, मेरा दिमाग़ चाटने में बिताते हैं। रोज रात को खाने के बाद आ जाते हैं और

आते ही पहला सवाल यह करते हैं, "सुनाओ बाबा, आज अख़बार में क्या लिखा है ?"

मुझे अख़बार कंठस्थ तो है नहीं, इसलिए अख़बार उनकी तरफ़ बढ़ा देता हूँ मगर वह अख़बार ज्यों-का-त्यों वापस करते हुए फ़रमाते हैं, "अख़बार तो सुबह को ही पढ़ चुका हूँ। इसमें क्या रखा है। कुछ तो सुनाओ। स्टालिन हिन्दुस्तान पर कब हल्ला बोलने वाला है।"

मेरा इरादा है कि किसी दिन जब मेरा धीरज बाक़ी नहीं रहेगा तो मैं उनसे साफ़-साफ़ कह दूँगा कि क़िबला न तो स्टालिन को बावले कुत्ते ने काटा है कि वह हिन्दुस्तान पर हमला करे और न मुझे कि मैं आपके साथ बैठकर दो-तीन घंटों तक अख़बार को फिर से पढ़ूँ। आपको पेंशन मिल चुकी है। आपको नींद नहीं आती तो फिर आप अपने घर बैठकर तारे गिनते रहिये, मेरा वक्त क्यों ज़ाया करते हैं ? मेरा दिमाग़ कहाँ इतना फ़ालतू है कि आप बैठे चाटा कीजिए। हज़रत मुझे सोने दीजिए। रात के ग्यारह बज रहे हैं। अपनी बुज़ुर्गी या मेरी फ़रमाँबरदारी का अनुचित लाभ तो न उठाइये।

ज़ियाउलरहमन के एक चौथे साथी आर्टिस्ट हैं। लोग उन्हें हर फ़न-मौला कहते हैं मगर उन्होंने बहुत सादगी से अपना उपनाम "बेकमाल" रखा है। वह एक बहुत अच्छे कवि, बहुत अच्छे कहानीकार, बहुत अच्छे चित्रकार, बहुत अच्छे गवैये और बहुत अच्छे लतीफ़ा गो (लतीफ़ा कहने वाला) हैं। बुलबुल तरंग भी बहुत अच्छा बजाते हैं। आजकल नाच भी सीख रहे हैं। मगर एक अच्छाई या ख़राबी यह है कि वह "सुनाने के मरज़" के शिकार हैं। जब कभी मैं उन्हें नज़र आ जाता हूँ तो बस पकड़कर ज़बरदस्ती मोटर में बैठा सीधे घर ले जाते हैं। हुक्म होता है कि पहले चाय सिग्रेट पीकर दम ताज़ा कर लो। चाय पीकर पहला ही सिग्रेट जलाता हूँ कि वह अपनी नई नज़्म या गज़ल शुरू कर देते हैं। अब मैं हूँ कि बात-बे-बात वाह-वाह कहने लगता हूँ। पन्द्रह-बीस नई कविताओं का स्टाक ख़तम हो गया तो वह अन्दर से चमड़े का मोटा बैग ले आये। अब कहानियाँ शुरू होती हैं—रूमानी कहानियाँ, राजनैतिक कहानियाँ, ऐतिहासिक कहानियाँ, जासूसी कहानियाँ।

दो बज गये। अन्दर से दोपहर का खाना आया। खाना खाते-खाते भी अपनी रचनाओं का जिक्र करते रहते हैं। खाना ख़त्म करने के बाद बने-चुने लेख, भाषण, दैनिकी, कुछ बड़े लोगों के पत्र, और कुछ कल्पित लड़कियों के प्रेम-पत्र। लीजिए अब पाँच बज गये। शाम की चाय आती है। शाम का वक़्त चूँकि कविता और गद्य के भारी प्रोग्रामों के लिए ठीक नहीं होता, इसलिए लतीफ़े और बैतबाज़ी का दौर शुरू हो गया। रात के आठ बज गये। अन्दर से रात का खाना आया। खाते-खाते टेबुल टाक होती है। नौ बज जाते हैं। अब कुछ ख़ामोशी और सन्नाटा होता है मगर इस पर भी चित्र दिखाने लगे :

"यह ताजमहल है, यह नख़लिस्तान है, यह नसीम जूनियर की तस्वीर है।"

"यह एक लड़की की तस्वीर है जिसके चेहरे पर प्रेम की विफलता के प्रभावों को ज़ाहिर करने की मैंने बहुत कोशिश की है।"

"मेरी यह तेंदुए की तस्वीर—अब की साल बम्बई की कला-प्रदर्शनी में भेजी जाने वाली है।"

खुदा खुदा करके रात के के दो बज गये। दो बजे से संगीत का प्रोग्राम शुरू हो गया फिर रात के पाँच बज गये। अब बुलबुल तरंग पर भैरवीं बजाने लगे। राग-रंग की यह मजलिस अभी जारी थी कि पास में किसी टापे में मुर्ग़ा बोल पड़ा। एक मस्जिद से मुअज़्ज़िन की अज़ान गूँजी।

फ़रमाया, "अरे देखा तुमने, आर्टिस्ट को दिन और रात के चक्र की कोई ख़बर नहीं होती। अरे ! तुम्हारी आँखें लाल हो रही हैं। अब तुम सो जाओ। मैं ज़रा आकाश की लालिमा का दर्शन करूँ।"

मैं सोचता हूँ कि क्या मैं सो जाऊँ ? मगर शायद मैं न सो सकता हूँ और न सोच सकता हूँ क्योंकि मेरे सिर में जितना कुछ गूदा था आर्टिस्ट ने सारे का सारा चाट लिया है। अब मुझे क्या करना चाहिये ?

अब मुझे यह करना चाहिए कि जब भी मुझे दोबारा आर्टिस्ट साहब से मिलना पड़े तो पहले ही बीवी-बच्चों को नसीहत कर आऊँ ताकि फिर

में भी आर्टिस्ट बन जाऊँ और मुझे दिन और रात के चक्र की खबर ही न हो। जाहिर है कि जब सारा दिमाग चाट लिया जायेगा तो फिर दिन और रात के चक्र की खबर ही न होगी।

ज़ियाउलहसन के पाँचवें भाई चौधरी रामकिशन जी हैं। बहुत बचपन में मेरे साथ प्राथमिक कक्षा में पढ़ते थे। प्राथमिक पास करने के बाद वह अपने दादा की कपड़े की दुकान पर बैठ गए। फिर ज़माना गुज़र गया। मैंने बी० ए० पास कर लिया। इसका राम किशन को भी पता चल गया। वह मुझे बड़ा लायक आदमी समझने लगे। अपने कारबार के पत्र पढ़ाने और लिखाने के अलावा अपने राज फोड़े के इलाज से लेकर अपनी लड़की की शादी तक हर मामले में मुझसे मशविरा करते हैं। उनकी बातचीत में बार-बार दोहराया जाने वाला वाक्य यह है

"भई तुम तो ज्ञान और साहित्य की खूब चर्चा करते हो। कुछ बताओ तो सही कि क्या देसी कपड़े के साथ विलायती कपड़ों का भी व्यापार करूँ?"

"क्या छोटे लड़के को गिरजा के स्कूल में भेज दूँ या अपने सरकारी स्कूल में ही भेजूँ?"

"क्या राज फोड़े का आपरेशन कराऊँ या दवाइयाँ ही खाता रहूँ?"

"क्या दीवान खाने की दीवार ईंटों से चुनवाऊँ या लकड़ी की जाली लगवा दूँ?"

"क्या हुक्का छोड़कर सिग्रेट शुरू कर दूँ या सिर्फ पान खाऊँ?"

मतलब यह कि रामकिशन जी हर रोज़ मुझसे मेरी काबिलियत का इम्तिहान लेने के लिए कोई सलाह-मशविरा करने ज़रूर आते हैं और सिर्फ इसलिए कि मैं उनके कहने के अनुसार ज्ञान और साहित्य की खूब चर्चा करता हूँ और मेरी खोपड़ी में बहुत बड़ा दिमाग है। अब मैं रामकिशन जी को किस तरह समझाऊँ कि मेरी खोपड़ी में जितना कुछ गूदा था वह ज़ियाउल हसन ने, तहसील के पेशकार ने, पड़ोसी बुज़ुर्ग ने, आर्टिस्ट ने और खुद आपने चाट डाला है। अब मैं आपको क्या मशविरा दे सकता हूँ कि अपने राज फोड़े का आपरेशन कराना चाहिए या दवाइयाँ खानी चाहियें। इसलिए मुझे माफ कीजिए और इजाज़त दीजिए। खुदा हाफ़िज़!

अण्डर ग्रेजुएट

अंजुम मानपुरी

यों हठधर्मी की और बात है वरना अंग्रेजी तालीम के फ़ायदों से कौन भलामानुस इनकार कर सकता है। और बातों को छोड़िए मौजूदा तालीम का यही एहसान क्या कम है कि लाखों नौजवानों को डिग्रियां दिलवाकर इस लायक बना दिया कि खेती, तिजारत, उद्योग, दस्तकारी जैसे ज़लील कामों की तरफ़ से ध्यान हटाकर सरकारी नौकरी हासिल करने के लिए निहायत ही आज़ादी के साथ अपनी किस्मत आजमाएं। अब अगर अपनी कोशिश में किसी को कामयाबी न हो तो इसमें अंग्रेजी तालीम का क्या कसूर। यूनिवर्सिटी का काम तो सिर मूँड कर चेला बना लेना है, मांग लाने का काम तो आपके जिम्मे है। इसके बाद मांग लाने की सनद पास रहने के बावजूद दर-दर ठोकरें खाने पर भी रोजी का सहारा नहीं मिलता तो यूनिवर्सिटी पर क्या इलजाम। कुछ सिरफिरे अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों की बेरोजगारी का सारा इलजाम सरकार के सिर थोप देते हैं—हालांकि सरकार ने अंग्रेज़ी तालीम पाए हुए लोगों को खपाने के लिए आजकल नौकरी का हल्क़ा इतना बड़ा कर दिया है जिसमें काफ़ी गुंजाइश है। पहले बी०ए०,

एम० ए० को डिप्टियाई किस्म की सिर्फ ऊँची नौकरियाँ मिलती थीं। अब ऐसे ग्रेजुएटों को जिनको खेती, तिजारत जैसे नीचे दर्जे के कामों से दिलचस्पी नहीं होती आसान से आसान नौकरी जैसे अरदली और चपरासी की जगह तक देने में सरकार उज्र नहीं करती क्योंकि नौकरी और वह भी सरकारी—चाहे अरदली की ही क्यों न हो—कारोबारी जक-जक बक-बक के कामों से तो हर हाल में बेहतर है। एक ग्रेजुएट से बनियों की तिजारत का काम लेना यूनिवर्सिटी की डिग्री की तौहीन नहीं तो और क्या है। मैथमेटिक्स में ऑनर्स को दुकान का कौड़ी-कौड़ी हिसाब रखने के लिए कहना एक ग्रेजुएट की कितनी इन्सल्ट है। नौकरी में और नहीं तो एक यही फायदा क्या कम है कि आदमी को फैशन से रहने का काफी मौका मिलता रहता है क्योंकि निनानवे के फेर में पड़ने के बाद तो फिर न कालर की परवाह न टाई की फिक्र और न फैशन का खयाल—रात-दिन सिर्फ रुपया पैदा करने की धुन। हालांकि शिक्षित जंटिलमैन की पहचान उसका अप-टू-डेट फैशन है और जब उसी के रख-रखाव का मौका न मिले तो फिर एक आम आदमी और पढ़े-लिखे में फर्क ही क्या रह जाता है।

मेरे मुलाकातियों में एक ग्रेजुएट साहब हैं। उनके कान में खुदा जाने किसने क्या फूंक दिया कि अपनी नौकरी की कोशिश और सिफारिश के सिलसिले में बड़े लोगों से सुबह-शाम जो मुफ्त मिलने का मौका मिलता था उसको छोड़-छाड़ बांकीपुर, डाक बंगला रोड में चंद मोचियों को नौकर रख कर जूते की एक दुकान खोल दी। यह कौन नहीं जानता कि मोची क्या, धोबी का काम भी आदमी शुरू कर दे तो सौ-पचास रुपये माहाना से ही मरेगा मगर पोजीशन भी आखिर कोई चीज है। एक शरीफ हिन्दुस्तानी और वह भी फर्स्ट क्लास ग्रेजुएट और काम करे मोची का। यह कयामत की निशानी नहीं तो क्या है। इस ग्रेजुएट मोची को देखकर मुझे बड़ा तरस आया कि एक हाई क्लास का एजुकेटेड आदमी इतने नीचे दर्जे के काम में इस तरह लगा हुआ है कि न कालर में चमकदार पालिश, न टाई का नॉट

ठीक नगर में ऐसा हुआ, कॉलेज की तालीम का एक सबब मगर, दफ़्तर में लिखने पढ़ी हुई, जूते की दुकान के बावजूद खुद पर शामिल तक नहीं। रुपये कमाने की धुन में फ़ैशन तक का ख़्याल नहीं और मगर जो इस ग्रेजुएट की सबसे बड़ी शिकायत है नाम को भी नहीं। उनका ख़्याल है बल्कि कि कोई नया करेगा अपने साथियों से बेतकल्लुफ़ी से बातें कर रहे हैं। अंग्रेज़ी तालीम की इन बेहूदगियों को देखकर जी चाहता कि पास पहुँचकर साफ़-साफ़ कह दूँ कि अगर चमार ही का काम करना था तो ग्रेजुएट होने की ज़रूरत ही क्या थी मगर किसके सामने जाकर सिर खपाता। वहाँ तो गुरुओं ने जिसके दिमाग़ में ठूँस दिया था कि आज़ादी के साथ अपने बाज़ुओं की ताक़त से चार पैसे कमाने वाला ज़्यादा तनख़्वाह पाने वाले ऊँचे अफ़सरों के मुक़ाबले में कहीं ज़्यादा इज़्ज़त की ज़िन्दगी बसर करता है। अब उन्हें कौन समझाए कि ऐसे छोटे काम से जिसमें हर ऐरे-ग़ैरे आने वाले गाहकों की ख़ुशामद करनी पड़े सरकारी नौकरी चाहे चपरासी की ही क्यों न हो हर हाल में बेहतर है क्योंकि उसमें डाँट-डपट कभी सुनने की नौबत भी आती है तो बड़े-बड़े अफ़सरों की और वह भी दफ़्तर ही के अन्दर। बाहर किसी को ख़बर भी नहीं होती। व्यापारियों की तरह हर मामूली ख़रीदार से चापलूसी की बातें तो नहीं करनी पड़तीं।

अब अगर आप डासन या आजकल के बाटा कम्पनी की मिसाल देकर कहें कि आख़िर अंग्रेज़ भी तो इस तरह के काम करते हैं तो जनाब अंग्रेज़ों की बात ही और है। उन्नत जाति के लिए सब जायज़ है। हिन्दुस्तानी अगर उनकी नक़ल करना चाहते हैं तो फ़ैशन, रहन-सहन वग़ैरह की नक़ल करने में कोई हरज नहीं है लेकिन कारोबार में उनकी बराबरी करना गोया छोटा मुँह बड़ी बात है। ख़ैरियत यही है कि नौकरी का ख़याल छोड़कर कारोबार में लगने का ख़ब्त अभी बहुत थोड़े ग्रेजुएटों के दिमाग़ में समाया है। बाक़ी लोग अभी तक इसी इरादे पर डटे हुए हैं कि दस-पंद्रह रुपये ही की जगह क्यों न हो मगर करेंगे तो सरकारी नौकरी। जलील किसानों का काम खेती और कंजूस बनियों का पेशा तिजारत वग़ैरह करके अंग्रेज़ी तालीम

भी बेकद्री न होने देंगे—और सच पूछिये तो ऐसे ही ग्रेजुएटों के दम से अभी तक अंग्रेजी तालीम की इज्जत बाकी है।

ये बातें तो ग्रेजुएटों की हैं जिन्हें हर आदमी जानता है। इनके बारे में ज्यादा बताने की जरूरत नहीं है। असल जानने की बातें तो अण्डर-ग्रेजुएटों के बारे में हैं। अंग्रेजी तालीम के फायदे का जानना चाहें तो ग्रेजुएट की नहीं अण्डर-ग्रेजुएट की स्टडी करें क्योंकि ज्यादातर ग्रेजुएट कालिज से निकलने के बाद उन विशेषताओं को खो बैठते हैं जो अंग्रेजी तालीम की वजह से पैदा होती हैं। अलबत्ता अण्डर-ग्रेजुएट कालिज के माहौल में रहता है और उसकी हालत दिलचस्पी से खाली नहीं है।

अण्डर-ग्रेजुएट की सूरत, शक्ल, चाल-ढाल, बातचीत, फैशन आप लाखों में बिल्कुल अलग पाएँगे। अण्डर-ग्रेजुएट को पहचानने के लिए आपको किसी से पूछने की जरूरत नहीं है। उसके रंग-ढंग देखकर आप कह देंगे कि यह अण्डर-ग्रेजुएट है। जिस तरह यूरोप की औरतें शिकारी सूट-बूट पहनकर और जूड़ा कटवाकर मर्द बनने के लिए एड़ी-चोटी का जोर लगा रही हैं उसी तरह उनके मुकाबले में हिन्दुस्तानी अण्डर-ग्रेजुएट भी सिर के आगे लम्बे-लम्बे बालों में कंघी से मांग निकालकर और कंगन की जगह रिस्टवाच की सुनहरी जंजीर नाजुक कलाई में बाँध, दाढ़ी-मूँछ का सफाया करके मर्द और औरत का फर्क मिटाने पर तुले हुए हैं। जिस नौजवान को आप इस रंग में देखें बस समझ जाएँ कि अण्डर ग्रेजुएट है। बातचीत करते वक्त अगर आप देखें कि एक हाथ तो पतलून की जेब में है और दूसरा हाथ कालर और टाई को दुरुस्त करने में लगा हुआ है और बातें तो कर रहे हैं आपसे और निगाहें दूसरी तरफ तो फिर यह पूछने की जरूरत नहीं कि आप अण्डर-ग्रेजुएट हैं या कोई इन्सान। आप जिससे बातें कर रहे हों उससे आपकी उम्र ज्यादा हो और बदकिस्मती से आप अंग्रेजी न जानते हों तो मजाक और उपहास का पहलू लिये हुए चबा-चबा कर इस तरह बातें की जाएँगी कि आपको फिर उसके अण्डर-ग्रेजुएट होने में कोई शक ही नहीं रहेगा। सिर्फ दाढ़ी-मूँछ को

पढ़ाई और दोस्तों की तरह अखबार-रिसाले भी अंडर-ग्रेजुएट का हैं क्योंकि नहीं खरीद कर लेता और किराये से भी आपको पता चल जाएगा कि यह मेल-जोल-तालिब है। जिस कमरे में आप इश्तहार देखिये समझ जाइये कि यहाँ अंडर-ग्रेजुएट बहुत ज्यादा है। आप अगर चाहें तो बगैर सूरत देखे भी समझ ले सकते हैं कि यह अंडर-ग्रेजुएट है। मिसाल के तौर पर आपकी नजर से कोई ऐसा खत गुज़रे जिसके लिफाफे पर पता तो अंग्रेजी में लिखा हो और अन्दर खत का मज़मून उर्दू में हो मगर न उसकी इबारत ठीक, न इमला सही तो आप बिना झिझक कहें कि इसका लिखने वाला कोई अंडर-ग्रेजुएट है। किसी शानदार कोठी या किसी मामूली मकान में आप जाएँ और उसके किसी छोटे-से कमरे या कोठरी में पाएँ देखें कि उसकी दीवारें नंगी तस्वीरों से सुशोभित हैं, एक तरफ़ ताक में आइना, कंघी, सेफ्टी रेज़र करीने से रखे हुए हैं और दूसरी तरफ़ मेज़ पर उपन्यासों और फ़िल्मी पत्रिकाओं के साथ-साथ ऐक्ट्रेसों की तस्वीरों का एल्बम भी है, एक तरफ़ कोने में ताश है, दूसरी तरफ़ चौकी पर ताश के पत्ते और शतरंज के मुहरे बिखरे हुए हैं - तो आपको इसी नतीजे पर पहुँचना पड़ेगा कि यह ज़रूर किसी अंडर-ग्रेजुएट का पढ़ने का कमरा है। यूँ तो रहन-सहन और चाल-ढाल से ही आपको किसी नौजवान के अंडर-ग्रेजुएट होने का पता लग जाएगा लेकिन इससे बढ़कर दिलचस्प बात यह है कि उसके रिश्तेदारों के बात करने के अन्दाज़ से भी आप अन्दाज़ा लगा सकते हैं कि इस खानदान में कोई अंडर-ग्रेजुएट है और इसका पता आम तौर पर उस वक्त ज्यादा लगता है जब उनसे किसी रिश्ते-नाते की बातचीत का मौका मिले।

अगर कोई साहब रिश्ते की बातचीत के पहले खाना, जोड़ा, दहेज, सलामी की रक़म के साथ-साथ तिलक फ़ट की मात्रा भी मालूम करना चाहें तो बस समझ जाइये कि उनका लड़का ज़रूर अंडर-ग्रेजुएट है क्योंकि इस तरह की बेजा फ़र्माइश करने की हिम्मत तब तक कोई आदमी नहीं कर सकता जब तक कि उसका लड़का अंडर-ग्रेजुएट न हो। सच पूछिये तो ये माँगें अपनी जगह

पर ठीक भी है क्योंकि उनके लड़के अण्डर-ग्रेजुएट से कहीं ग्रेजुएट हो भी गए तो सरकारी नौकरियों का हाल मालूम ही है— अब एक जटिलमेन के खर्च के लिए यूनिवर्सिटी की डिग्री के बाद घर का कुर्की से बचाने की इसके अलावा क्या सूरत है कि शादी को ही रोजी का जरिया बनाया जाए। अगर निकाह पहले हो चुका हो और लड़की की बदकिस्मती से उसके बाद अण्डर-ग्रेजुएट हो गए तो आप क्या समझते हैं कि निकाह की जंजीर में बंध जाने के बाद हाथ-पाँव फैलाने का मौका नहीं रहा ? जी आप हैं किस खयाल में ? ससुराल वालों से काफी रकमें वसूल करने का मौका तो निकाह के बाद में ही मिलता है। लड़की वालों की तरफ से शादी के लिए तकाजे पर तकाजा है, आदमी पर आदमी आ रहा है, खत पर खत लिखे जा रहे हैं मगर—

वो एक खामुशी तिरी सबके जवाब में

अगर किसी लड़के वाले ने शराफत से काम लिया तो यह जवाब लिखा कि जब तक लड़का अपने पाँव पर खड़ा होने के लायक न हो उस वक्त तक गृहस्थी का बोझ डालना किसी तरह मुनासिब नहीं। लीजिए साहब अब ऐसे लूल्हे-लंगड़े लड़के को अपने पाँव पर खड़ा होने के लिए ससुराल से नक्दी का सहारा जब तक न मिले ससुराल की तरफ क़दम बढ़ा कैसे सकता है। जिन अभागों को ऐसे लोगों से वास्ता पड़ा है वही कह सकते हैं कि अण्डर-ग्रेजुएट दूसरों के लिए कितनी बड़ी मुसीबत बन जाते हैं।

मेरे मुलाकातियों में एक साहब हैं जिनका नाम तो मुजीबुल्लाह है मगर जिन्हें लोग मुख्तार के नाम से ज्यादा जानते हैं। उन्होंने अपने लड़के मियाँ रज्जाकअली उर्फ रज्जू का रिश्ता अपने एक रिश्तेदार मौलवी फहीमुल्लाह की लड़की से उस वक्त तय किया था जब उनका लड़का मैट्रिक भी पास नहीं हुआ था। कई साल के बाद खुशकिस्मती से अलीगढ़ में यार्ड० ए० में पास होकर मियाँ रज्जू जो अण्डर-ग्रेजुएट हो गए तो मुख्तार साहब ने पुराने रिश्ते का खयाल छोड़कर बड़े-बड़े दौलतमंद घरानों में बातचीत शुरू कर दी। मौलवी फहीमुल्लाह की तरफ से जब शादी का तकाजा शुरू हुआ तो पहले कुछ दिनों तक टालते रहे और शादी की तारीख मुकर्रर करने के लिए जब ज्यादा

ज़ोर दिया गया तो यह कहकर साफ़ जवाब दे दिया कि यह रिश्ता उनके लड़के को पसन्द नहीं, इसलिए मजबूरी है। बिना वजह रिश्ता तोड़ने पर जब रिश्तेदारों ने मलामत की तो मुख्तार साहब बिगड़कर कहने लगे, "तो क्या जान-बूझकर अपने होनहार अच्छे-तन्दुरुस्त लड़के को ऐसी जगह झोंक दूँ कि आगे चलकर जब एक दिन डिप्टी मजिस्ट्रेटी मिलेगी तो वहां उसकी पोज़ीशन के लायक रहने के लिए न कोई शानदार कोठी न फ़र्नीचर न मोटर, न कोई दूसरा सामान। आख़िर ससुराल से रहने की सूरत क्या होगी।"

उसके जवाब में कहा गया कि मौलवी फ़हीमुल्लाह बहुत बड़े ज़मींदार न सही लेकिन पांच-छह हजार रुपये सालाना आमदनी की जायदाद दाल रोटी से गुज़र करने के लिए काफ़ी है। यह सुनकर मुख्तार साहब ने कहा, "यही समझकर तो यह रिश्ता पहले मैंने किया था लेकिन जिस वक्त यह रिश्ता तय हुआ था उस वक़्त फ़हीम साहब की सिर्फ़ यही एक लड़की थी। उसके बाद कुछ ही बरसों के अन्दर-अन्दर उनके चार-पांच लड़के और हो गए। अब मेरे रज्जू के लिए जायदाद ही कितनी रह जाती है।"

मुख्तसर यह कि मौलवी फ़हीमुल्लाह को साफ़-साफ़ कहला भेजा कि अपनी लड़की के लिए कोई दूसरा रिश्ता तलाश करें और ख़ुद ख़ास-ख़ास लोगों के ज़रिये अपने लड़के के रिश्ते का विज्ञापन शुरू कर दिया। कई जगहों से बातचीत भी होने लगी। जिससे भी रिश्ते की बातचीत होती मुख्तार साहब सबसे पहले उससे ये सवाल करते—जोड़े की रक़म पहले मालूम होनी चाहिये। दहेज में क्य-क्या चीजें मिलेंगी ? मोटर भी उनमें शामिल है या नहीं ? नक़दी कितनी मिलने की उम्मीद है ? लड़के की तालीम का ख़र्च उठाएंगे या नहीं ? अगर लड़का पढ़ने के लिए विलायत जाना चाहे तो इसका ख़र्च भी देंगे या नहीं ? इन फ़र्माइशों के अलावा सबसे बड़ा सवाल यह होता कि विरासत में मिलने वाली जायदाद की आमदनी कितनी है। इस उम्मीद पर कि जिसका ऑफ़र ज़्यादा होगा उसी का टेंडर मंजूर किया जाएगा अब तक

मुख्तार साहब ने कहीं रिश्ते के बारे में कोई फैसला नहीं किया था। इत्तिफाक से एक रोज मुख्तार साहब किसी मुकदमे में मशविरा करने के लिए मौलवी अब्दुल कैयूम वकील के यहां पहुँचे। कानूनी मशविरे के बाद उन्होंने रिश्ते का जिक्र जो छेड़ा तो वकील साहब ने कहा, "हाँ खूब याद दिलाया! मेरे चचेरे भाई प्रोफेसर रिजवी एम० ए० को जो आजकल हैदराबाद की उस्मानिया यूनिवर्सिटी में साइंस के लेक्चरर हैं आप जरूर जानते होंगे। उनका असली मकान मेरे गाँव से दो मील की दूरी पर हसनपुर गाँव में है मगर एक अर्से से हैदराबाद ही में रहते हैं। उनकी माँ आप ही के गाँव की रहने वाली थी। शायद आप से भी कोई रिश्ता हो।'

मुख्तार साहब ने कहा, "हो सकता है मगर आपके कहने का मतलब क्या है ?"

मौलवी अब्दुल कैयूम ने कहा, "कल एक खत भाई रिजवी का मेरे पास आया है कि मैं अपनी बच्ची का रिश्ता उसी तरफ अपने ही लोगों में करना चाहता हूँ। किसी अच्छे रिश्ते की तलाश के लिये मुझे लिखा है। आप अपने लड़के का रिश्ता पहले कहीं पक्का न कर चुके होते तो यह बहुत ही अच्छा मौका था मगर खैर जो बात होनी थी वह हो चुकी। अब आप से कहने की गरज यह है कि बिरादरी में कोई लायक लड़का हो तो मुझे खबर दीजिएगा मगर लड़का हो पढ़ा-लिखा। दौलतमंद होना कोई जरूरी नहीं क्योंकि खुदा की मेहरबानी से उन्हें खुद किसी बात की कमी नहीं। प्रोफेसरी की आठ सौ रुपया माहाना तनख्वाह के अलावा उनके वालिद ने जो हैदराबाद में एक ऊँचे ओहदे पर थे करीब दो हजार रुपये माहाना किराये की आमदनी के मकानात और डेढ़ लाख रुपये बैंक में छोड़े हैं और इन सबकी वारिस आँख-कान में प्रोफेसर रिजवी की यही इकलौती लड़की है। खैर आपके लिए तो अब मौका नहीं रहा लेकिन किसी अच्छे घराने का कोई पढ़ा-लिखा लड़का आपकी नजर में हो तो उन्हें खबर दी जाए।"

प्रोफेसर रिजवी की दौलत और आमदनी का हाल सुनकर मुख्तार साहब के मुँह में पानी भर आया। कहने लगे, "वकील साहब शायद आपको खबर

नहीं कि इस रिश्ते को टूटे हुए बहुत दिन हो गये। कई जगहों से पैगाम भी आने लगे हैं लेकिन अभी बात कहीं पक्की नहीं हुई। मालूम होता है कि हैदराबाद ही में यह रिश्ता मुझे करना पड़ेगा। अपने घर में लड़की रहते हुए दूसरी जगह मुझे तलाश करने की ज़रूरत ही क्या है। आप उन्हें आज ही लिख दीजिए कि मुझे मंज़ूर है। रज़ू जैसे लड़के से रिश्ता करने में उन्हें भी कोई उज्र न होगा। अच्छे काम में देर न करनी चाहिये। बस उन्हीं ख़त लिख भेजिये कि मैंने आपकी तरफ़ से ज़बान दे दी।"

वकील साहब ने कहा, "पहली बात तो यह कि ज़बान देने का मुझे कोई हक नहीं। दूसरे रिश्ते-नाते में इतनी जल्दी करना भी ठीक नहीं। वैसे मुझे आपकी तरफ़ से पैगाम भेजने में कोई उज्र नहीं लेकिन दिक़्क़त यह है कि रिज़वी साहब एम० ए० होने के बावजूद मौलवी टाइप के आदमी हैं और आपके लड़के एकदम साहब बहादुर। वह पुरानी तहज़ीब के चाहने वाले और यह अंग्रेजी रहन-सहन के प्रेमी। दोनों का मेल शायद ही बैठ सके।"

मुख़्तार साहब ने कहा, "इन बातों से आपको क्या गरज़। देखना यह है कि जिससे वह रिश्ता कर रहे हैं पढ़ा-लिखा है या नहीं। अपनी बिरादरी में अंडर-ग्रेजुएट लड़का रहते हुए दूसरी जगह रिश्ता करने की कोई वजह नहीं मालूम होती। भाई रिज़वी के वालिद की पहली शादी मेरी ससुराल के चचा के मामू की भतीजी से हुई थी, इसलिए उनसे बहुत नज़दीक का रिश्ता है और फिर मेरे और आपके बीच जो सम्बन्ध है उसको देखते हुए मुझे उम्मीद है कि आप अगर जोरदार लफ़्ज़ों में लिखेंगे तो वह ज़रूर मंज़ूर कर लेंगे।"

मुख़्तसर यह कि मुख़्तार साहब ने अपने सामने वकील साहब से बहुत जोर देकर अपने लड़के के बारे में ख़त लिखवाया। वकील साहब ने ख़त लिखने में बहुत सावधानी से काम लिया लेकिन फिर भी मुख़्तार साहब के बताए हुए कुछ जुमले लिखने ही पड़े। आठ दिन के बाद हैदराबाद से यह जवाब आया :

"जनाब वकील साहब !

मेरी बच्ची के रिश्ते की तलाश में जो तकलीफ आपने उठाई है उसका शुक्रिया अदा करना इसलिए मुनासिब नहीं समझा कि यह भी आप ही की बच्ची है। जिस लड़के के बारे में आपने लिखा है अगर आपकी राय है तो मुझे कोई उज्र नहीं मगर चूंकि एक अर्से से मेरा इरादा है कि दो माह की फुरसत लेकर आप लोगों से मिलने के लिए वहां पहुंचूं इसलिए अगले महीने जब गरमी बहुत कम हो जाएगी और साथ ही बारिश भी होने लगेगी मैं हैदराबाद से दिल्ली होता हुआ पटना पहुंचूंगा। उसी वक्त आपके मशविरे से रिश्ते के बारे में कोई आखिरी फैसला करूंगा। रवाना होने के दो रोज़ पहले तार से आप को इत्तिला दे दूंगा।"

खत का मज़मून सुनकर मुख्तार साहब ने खुश होकर कहा, "जब आप ही के मशविरे पर उन्होंने छोड़ा है तो यकीन है कि आप अपने भतीजे यानी मियां रज्जू के अलावा किसी और की सिफारिश नहीं कर सकते।" घर पहुंच कर अपने लड़के को अलीगढ़ लिख भेजा, "खुदा ने महीनों की दौड़-धूप के बाद तुम्हारा रिश्ता ऐसी जगह ठहराया है जिसके बारे में मैं सोच भी नहीं सकता था। इज्जत के साथ साथ काफी दौलत भी है। दुआ है कि अब के इम्तिहान में खुदा तुम्हें अंडर-ग्रेजुएट से ग्रेजुएट बना दे ताकि खानदान का नाम रौशन हो।"

× × ×

जुलाई की छुट्टियों में जब लड़के अलीगढ़ से घर रवाना होने लगे तो मियां रज्जू और उनके साथी एहसान, शफ़ीक, मुजतबा, इन चारों की राय हुई कि रास्ते में एक रोज़ के लिए बनारस ठहर कर बनारस की सुबह भी देखनी चाहिए। चुनांचे अलीगढ़ से रवाना होकर ये चारों बनारस पहुंचे और स्टेशन के पास ही एक होटल में सामान रखकर घूमने निकले तो पांच बजे शाम को वापस आए और फिर पांच बजे सुबह ही बिस्तर से उठते ही राजघाट पहुंचे। वहां एक किश्ती किराया करके घाट के किनारे-किनारे बनारस की सुन्दरियों

से स्नान का नज़ारा करने के बाद भी कई घाट पर किश्ती से उतर कर जो शहर की सड़क-गली घूम की ता फिर शाम को अपने गाम को होटल में पहुँचे। गरज़ दो दिन तक खूब सैर-सपाटा करने के बाद तीसरे दिन बनारस से रवाना होकर मुगल सराय स्टेशन पहुँचे। कलकत्ता जाने वाली पंजाब मेल के गुज़रने में कुछ ही मिनट बाकी थे। ये लोग बनारस वाली ट्रेन से उतर कर उसमें सवार होने के लिए किसी ऐसे डिब्बे की तलाश में जिस में आराम से बैठ सकें प्लेटफार्म पर इधर-उधर गश्त करने लगे। ट्रेन के तमाम डिब्बे ठसाठस भरे हुए थे। एक ऐसे डिब्बे को देखकर जिसमें और डिब्बों से कुछ कम लोग थे मियां रज्जू ने अपने साथियों से कहा कि वक्त कम है, चलो इसी में सामान रखवाओ। नईम ने कहा, "मगर देखो आपने इसमें कोई ऐसा भला आदमी है जिससे हम लोग बात कर सकें। वह देखिए एक नम्बर पंडित जी सिर पर पगड़ी धरे बैठे हैं और वहां उस कोने में देखिये कोई मौलाना या शाह साहब अपनी दाढ़ी समेत मौजूद हैं। मेरे ख्याल से इन लोगों के साथ सफ़र करने में कोई लुत्फ़ नहीं मिलेगा। आगे कोई दूसरा डिब्बा देखना चाहिए।" मिस्टर रज्जू ने कहा, "इन लोगों से तो सफ़र और भी दिलचस्प रहेगा। पंडित जी और मौलवी साहब से छेड़कर बातें करने में बड़ा लुत्फ़ आएगा। देखो तो कैसी दिल्लगी रहती है।"

चूँकि और डिब्बों में जगह भी नहीं थी और वक्त भी कम था इसलिए मिस्टर रज्जू के मशविरे पर अमल करके सारा सामान के साथ उसी डिब्बे में घुस पड़े। डिब्बे के अन्दर दाखिल होते ही एहसान ने पंडित जी को छेड़कर कहा, "महाराज ! ज़रा पत्रा विचार कर कहिये तो हम लोग इम्तिहान में पास होंगे या नहीं ?"

पंडित जी ने कहा, "मैं कोई ज्योतिषी नहीं हूँ, हिन्दी साहित्य सम्मेलन का प्रचारक हूँ।"

अब मिस्टर रज्जू पंडित जी से निराश होकर दाढ़ी वाले बुज़ुर्ग के पास छेड़खानी की ग़रज़ से पहुँचे और दोनों हाथ बहुत अदब के साथ उनकी तरफ़

बटा दिये। उनको क्या मालूम कि मेरे साथ मजाक किया जा रहा है। हाथ मिलाने के बाद जगह बनाकर अपनी बेंच पर बैठने को कहा। मिस्टर रज्जू इसी गरज से उनके पास पहुँचे ही थे। अब उन्होंने शरारत भरे सवाल करने शुरू कर दिए

"आप शायद किसी मस्जिद के पेश इमाम या किसी खानकाह के पीर हैं।"

"आपने मेरे बारे में जो राय कायम की है उसका शुक्रिया लेकिन यह राय कायम करने की जाहिर में कोई वजह मालूम नहीं होती।"

"चूँकि तरक्की के इस दौर में दाढ़ियाँ सिर्फ मस्जिद और खानकाह में ही रह गई है। हो सकता है कि मेरा खयाल सही न हो मगर अन्दाजे की बुनियाद गलत नहीं है। इतनी बड़ी दाढ़ी की देख-भाल में बहुत ज्यादा वक्त लगता होगा और रोजाना कंघी करने में काफी जहमत होती होगी।"

"जी उससे बहुत ही कम जितनी रोज शेव करने या सेफ्टी रेजर से बराबर गालों को सुरखते रहने में उठानी पड़ती है।"

'माफ कीजिए! हो सकता है कि किसी जमाने में किफायत के खयाल से नाई का खर्च बचाने के लिए दाढ़ी रखने का रिवाज हो मगर इस तरक्की और खुशहाली के जमाने में जबकि दाढ़ी क्या मूँछ तक रखना बुरा समझा जाता है इतनी लम्बी-चौड़ी दाढ़ी लगाये रखने की कोई वजह नहीं दिखाई देती।"

"सही कहा लेकिन कुछ लोगों का खयाल है कि आज ही दाढ़ी रखने की ज्यादा जरूरत है, क्योंकि अंग्रेजी तालीम और तहजीब के असर से हिम्मत और बहादुरी जैसी विशेषताएँ खोकर हम लोग औरतों की तरह सिर्फ बुज-दिल नहीं हो गये बल्कि औरतों की बहुत सी बातें हम लोगों में आ गई है जैसे बनाव-सिंगार, फैशन का शौक वगैरह। ऐसी हालत में मर्द और औरत में फर्क करने के लिए ले-दे के एक दाढ़ी ही रह गई है। अब औरतों की आदतों के साथ-साथ दाढ़ी-मूँछ साफ करके औरतों जैसी सूरत भी बना लेना कहाँ तक ठीक है ?"

"आपको शायद मालूम नहीं कि आमतौर से पढ़े-लिखे लोग और ख़ास तौर पर अलीगढ़ कालिज के लोगों का ख़याल है कि दाढ़ी और अक़्ल दोनों एक जगह नहीं रह सकती।"

"अलीगढ़ कालिज की बुनियाद रखने की हिमाक़त शायद दाढ़ी रखने ही की वजह से सर सैयद से हुई।"

"आपको शायद इससे इनकार नहीं होगा कि दाढ़ी वालों और आजकल के पढ़े-लिखे नौजवानों में सिर्फ़ यह फ़र्क़ है कि ये जो भी करते हैं सबके सामने डंके की चोट पर करते हैं और दाढ़ी वाले अपनी दाढ़ी को टट्टी की आड़ बनाते हैं।"

"लेकिन 'अकबर' इलाहाबादी की वह रुबाई आपने शायद नहीं सुनी जिस का आख़िरी मिसरा यह है :

वल्लाह कि बे-हया से मक्कार अच्छा।"

ये बातें हो रही थीं कि गाड़ी एकाएक आरा स्टेशन पर आकर ठहरी। मिस्टर रज्जू प्लेटफार्म पर टहलने के लिए अपने दोस्तों के साथ बातें करते हुए उतरे।

रज्जू—"कहो यार ! कैसी ख़ूबसूरती के साथ मैंने उनकी दाढ़ी की गत बनाई और कैसी-कैसी चुटकियां लीं !"

एहसान—"मगर हैरत है कि इन फबतियों के बावजूद वह बिगड़े नहीं।"

मुजतबा—"मालूम होता है कि उस ग़रीब ने समझा ही नहीं वरना कोई और होता तो दाढ़ी की तौहीन पर ग़ुस्से से दाढ़ी मुँह में रखकर चबाने लगता।"

नईम—"यूँ आप उसे अहमक़ समझें तो और बात है वरना बातचीत से यही पता लगता है कि उसे बहुत जानकारी है।"

रज्जू—"आख़िर मौलवी है तो अरबी या कम-से-कम फ़ारसी या उर्दू जानता ही होगा और उर्दू अख़बार पढ़ने की वजह से कुछ-न-कुछ जानकारी हो ही जाती है और यह कोई क़ाबिलियत की दलील नहीं है।"

इसी दर्मियान में इंजन ने सीटी दी और वे सारे फौरन डिब्बे में दाखिल हुए तो देखा कि दाढ़ी वाले बुज़ुर्ग नमाज़ पढ़ रहे हैं। मजबूरी में वे सारे दूसरी बेंच पर बैठ गए। नमाज़ पढ़ने के बाद उन्होंने हैंडबैग से कुरान शरीफ़ निकालकर पढ़ना शुरू किया। मिस्टर रज्जू ने अपने साथियों से कहा, 'बेहतर हुआ बैठे रहना ठीक नहीं कुछ गाना ही शुरू कर दिया जाए।' चुनांचे उन्होंने मुस्कराकर गाया

नमाज़ कैसी कहाँ का रोज़ा अभी तो जामे-शराब में हूँ

इसके बाद मिस्टर रज्जू ने दाग़ की वह ग़ज़ल गाई जिसका मतला यह है

मिट्टी की भी मिले तो रखा है शराब में!

इसके बाद मर्दक ने एक दूसरी और कहमान से दादरा गाया। यह सिलसिला उस वक्त तक जारी रहा जब तक कि गाड़ी दानापुर स्टेशन पर आकर रुकी। चूँकि बांकीपुर एक ही स्टेशन बाकी रह गया था इसलिए दाढ़ी वाले बुज़ुर्ग भी अपना सामान दुरुस्त करने में लग गए। मिस्टर रज्जू अपने दोस्तों के साथ प्लेटफ़ार्म पर चहल-क़दमी करने लगे। इंजन की सीटी होते ही सारे अपने डिब्बे में दाखिल हुए तो देखा कि अफ़्सर के एक दूसरे दोस्त वहाँ बैठे हुए हैं। इधर-उधर की बातों के बाद जब इस दोस्त ने मिस्टर रज्जू से दाढ़ी वाले बुज़ुर्ग की तरफ़ इशारा करके पूछा कि हज़रत कहाँ से साथ हो गये तो मिस्टर रज्जू ने इस ख़्याल से कि वह न समझ सकें अंग्रेज़ी में जवाब दिया कि 'यह दिलचस्प जानवर मुग़ल सराय से हम लोगों के साथ है। हम लोगों ने इसे ख़ूब ही उल्लू बनाया मगर यह बेवकूफ़ हम लोगों की बातों को न समझ सका।' मिस्टर रज्जू ने इतना ही कहा था कि गाड़ी बांकीपुर स्टेशन में दाखिल हुई। मिस्टर रज्जू ने खिड़की से बाहर सिर निकालकर जब प्लेटफ़ार्म पर नज़र दौड़ाई तो देखा कि उनके वालिद (पिता) मुख़्तार साहब और मौलवी अब्दुल क़य्यूम और उनके साथ दस-बीस आदमी और स्टीमर बुक स्टाल के पास खड़े सामने से गुज़रने वाले हर डिब्बे

की ओर से देख रहे थे। जिस डिब्बे में मिस्टर रज्जू और उनके साथी बैठे थे वह ठीक ही सामने से गुज़रा। सब-इन्सपेक्टर लपके और कुछ कदम साथ चलने के बाद गाड़ी रुकने के साथ ही दरवाज़े का पट खोलकर डिब्बे के अन्दर घुस गये। सबसे पहले मुख्तार साहब दाढ़ी वाले बुज़ुर्ग की तरफ़ दोनों हाथ बढ़ाए गले मिलने के लिए आगे बढ़े और देर तक उनसे लिपटे रहे। इसके बाद कासिम साहब को गले मिलने का मौका देने के लिए मुख्तार साहब ने उस जगह से हटकर दूसरी तरफ़ मुँह फेरा तो अपने लड़के पर नज़र पड़ते ही खुश होकर कहने लगे, "कासिम साहब, लीजिए, मियाँ रज्जू भी इसी डिब्बे में बैठे हुए हैं।"

इसके बाद लड़के से कहा, "इधर आओ, अपने हैदराबादी चचा से मिलो। प्रोफ़ेसर रिज़वी साहब एम० ए० लेक्चरर, उस्मानिया यूनिवर्सिटी आप ही हैं।"

यह सुनकर मियाँ रज्जू की यह हालत कि काटो तो लहू नहीं बदन में। जल्दी में और तो कुछ समझ में आया नहीं। इधर मुख्तार साहब प्रोफ़ेसर रिज़वी से मिलने के लिए पास बुलाने रहे और उधर मिस्टर रज्जू डिब्बे से छलांग लगाकर प्लेटफ़ार्म पर और वहाँ से यह जा वह जा, नज़रों से गायब हो गए। लड़के की इस हरकत पर मुख्तार साहब को बहुत गुस्सा आया मगर कहते गया। प्रोफ़ेसर रिज़वी ने जब पूछा कि यह आपके लड़के थे तो अपनी शर्मिंदगी मिटाने के लिए मुख्तार साहब ने कहा, "जी हाँ बचपन ही से बहुत शर्मीला है। देखिये ना अंडर-ग्रेजुएट हो जाने पर भी अभी तक अपने बुज़ुर्गों के सामने आते हुए शरमाता है।" यह सुनकर प्रोफ़ेसर साहब सिर्फ़ मुस्कराकर रह गये।

इसके बाद मौलवी अब्दुल क़ैयूम साहब प्रोफ़ेसर रिज़वी को लेकर अपने मकान की तरफ़ रवाना हुए और मुख्तार साहब गुस्से में वहाँ से सीधे अपने घर पहुँचे। देखा कि मिस्टर रज्जू अपनी माँ से कुछ बातें कर रहे हैं। मिस्टर रज्जू पर नज़र पड़ते ही बिगड़कर कहने लगे :

"इतने आदमियों के सामने गिरहकटों की तरह डिब्बे से उचककर बेतहाशा भाग जाना—यह कौन-सी हरकत हुई। और तो और, खुद प्रोफेसर रिजवी दिल में क्या कहते होंगे कि यह कैसा उठाईगीरा है।"

मिस्टर रज्जू—"मुझे क्या खबर! मैं कोई वली अल्लाह थोड़ा ही हूँ कि इतनी लम्बी-चौड़ी दाढ़ी के बावजूद समझ जाता कि यह अंग्रेज़ी पढ़े हुए ही नहीं बल्कि प्रोफेसर भी हैं और इनके यहाँ रिश्ते की बातचीत हो रही है।"

मुख्तार साहब—"मगर यह आखिर सिर पर पाँव रखकर भागने की वजह?"

मिस्टर रज्जू—"असल में बात यह है कि इनसे दाढ़ी के बारे में कुछ बहस हो गई थी और यह कुछ शर्मिंदा से हो गए थे। जब मुझे मालूम हुआ कि यही प्रोफेसर रिजवी हैं तो इस ख़याल से कि आप लोगों के सामने मेरी मौजूदगी से झेंप न जाएँ मैंने एक मिनट भी वहाँ ठहरना ठीक नहीं समझा।"

मुख्तार साहब—"भला ऐसे कट्टर मौलवी टाइप के आदमी से दाढ़ी की बहस में उलझने की क्या जरूरत थी। यह तो सारी की-कराई मेहनत ही अकारत होना चाहती है।"

मिस्टर रज्जू—"मुझे क्या मालूम था। जैसे ही आपने उनके यहाँ रिश्ते के बारे में खबर दी थी वैसे ही उनका हुलिया या तस्वीर भेज देते तो इसकी नौबत ही काहे को आती।"

मुख्तार साहब—"ख़ैर देखिये, कल की बातचीत से अंदाजा मिल जाएगा कि उन्होंने क्या असर लिया।"

दूसरे दिन मुख्तार साहब शानदार दावत का इंतजाम करके अपने होने वाले समधी को बुलाने के लिए वकील साहब के यहाँ पहुँचे तो रिजवी साहब ने कहा, "मैं अभी हफ्तों रहूँगा। इतनी जल्दी क्या है। किसी और दिन देखा जाएगा।"

मुख्तार साहब—"मियाँ रज्जू की ख्वाहिश है कि आप आज हमारे यहाँ तशरीफ लाएँ।"

प्रोफ़ेसर रिज़वी—"अच्छा यह आपके लड़के हैं ?"
मुख़्तार साहब—"जी हाँ, आप ही का गुलाम है।"
प्रोफ़ेसर रिज़वी—"यह पढ़ते किस क्लास में हैं ?"
मुख़्तार साहब—"आपकी दुआ से अन्डर-ग्रेजुएट हैं।"
प्रोफ़ेसर रिज़वी—"शायद यह अलीगढ़ कालिज में पढ़ते हैं।"
मुख़्तार साहब—"जी हाँ, पाँच-छह साल से वहीं पढ़ रहे हैं। खर्च का खयाल न करते हुए मैंने मैट्रिक के बाद ही वहाँ दाखिल कर दिया।"
प्रोफ़ेसर रिज़वी—"मुमकिन है कि पाँच-छह साल में वह बी० ए० भी न कर सके।"

मुख़्तार साहब ने घबराकर जल्दी से वजह बताई, "बात यह है कि दो-तीन साल ठीक इम्तिहान के मौके पर बीमार पड़ गए, वरना वह बहुत ही मेहनती और तेज है।"

प्रोफ़ेसर रिज़वी—"मालूम होता है कि उनकी सेहत अच्छी नहीं है।"
मुख़्तार साहब—(कुछ परेशान होकर) "नहीं जनाब ! बचपन ही से बहुत तंदुरुस्त है। क्रिकेट और फ़ुटबाल खेलने की वजह से उनकी तंदुरुस्ती और भी अच्छी है। बाक़ी रही बीमारी, तो कभी नजला जुकाम हो ही जाता है।"
प्रोफ़ेसर रिज़वी—"जब क्रिकेट वग़ैरह का उन्हें ज्यादा शौक़ है तो उसमें काफ़ी दिलचस्पी लेने की वजह से ज्यादा वक़्त इन्हीं खेलों में गुजरता होगा और कई साल तक फ़ेल होने की वजह शायद यही खेलकूद का शौक़ है।"
मुख़्तार साहब—"नहीं, यह बात नहीं। पढ़ने में काफ़ी वक़्त देते हैं। क्रिकेट वग़ैरह तो फ़ुरसत के वक़्त में खेलते हैं।"
प्रोफ़ेसर रिज़वी—"आपके लड़के की उम्र क्या है ?"

यह सोचकर कि अगर ठीक-ठीक उम्र बतला दी तो उम्र की कमी-बेशी कहीं रिश्ते में रुकावट न डाल दे, मुख़्तार साहब ने इसका पहलू बचाकर कहा, "आपकी लड़की से दो-चार साल ज्यादा ही उम्र होगी।"

प्रोफेसर रिज़वी—"आखिर कितनी उम्र है ?"

मुख्तार साहब—(घटाकर) "यही सोलह-सत्रह के लगभग होगी।"

प्रोफेसर रिज़वी—"आप की जानकारी में बीस-बाईस साल की उम्र का कोई लड़का बिरादरी में हो तो मुझे दीजिएगा।"

मुख्तार साहब—(बौखलाकर) "सोलह-सत्रह साल जो मैंने कहा यह तो स्कूल की उम्र है वरना असल में तो इसी माह में पूरे बाईस साल होने हैं।"

मुख्तसर यह कि जब मुख्तार साहब ने बौखलाए हुए गवाहों की तरह प्रोफेसर रिज़वी के सवालों का जवाब देना शुरू किया तो रिज़वी साहब ने बातचीत का सिलसिला बंद करते हुए कहा कि इसके बारे में फिर कभी बात होगी। मुख्तार साहब के चले जाने के बाद जब मौलवी अब्दुल कैयूम साहब ने दावत के इनकार की वजह पूछी तो रिज़वी साहब ने दुख के साथ कहा, "मुझे आपसे ऐसी उम्मीद नहीं थी। आपने तो मेरी बच्ची को कुएँ में धकेल देने का इन्तज़ाम कर दिया था।"

वकील साहब ने कहा "मैंने मन में अपनी कोई राय कायम नहीं की थी और अगर करता भी तो कोई ऐसी बुरी बात न थी क्योंकि लड़का पढ़ा-लिखा और ग्रेजुएट है।"

प्रोफेसर रिज़वी ने कहा—"अगर यूनिवर्सिटी ऐसे ही ग्रेजुएट तैयार करती है तो सिवाय इसके क्या कहा जाए कि यूनिवर्सिटी और उसके ग्रेजुएट पर खुदा रहम करे।"

इसके बाद रेल की तमाम बातें बताने के बाद बोले, "उनकी बदतमीजियों को इसलिए बर्दाश्त करता रहा ताकि इस तरह के नौजवानों के सोचने के ढंग के बारे में जान सकूँ। मिर्ज़ा रज्जू और उनके साथी मुझे ज़लील करने और बेवकूफ़ बनाने की कोशिश पर खुश हो रहे थे और मेरा दिल उनकी हालत पर खून के आँसू रो रहा था। मुख्तार साहब से साफ़-साफ़ कह दीजिए कि इस रिश्ते का कोई ज़िक्र न करें।"

शरीफ़ साहब की यह हिम्मत भी न हुई कि साफ़-साफ़ कहकर मुख्तार साहब का दिल तोड़ दें। उन्होंने यह कहकर टाल दिया कि प्रोफ़ेसर रिज़वी साहब हैदराबाद वापस जाकर अपने खास लोगों से मशविरा करके फ़ैसला करेंगे और खत के ज़रिये खबर देंगे।

मुख्तार साहब [illegible] और [illegible] मगर लगने लगा कि वह सौदा तय होता नज़र नहीं आता। निराश होकर दूसरी जगहों से रिश्ते की बातचीत शुरू कर दी लेकिन अब दिक्कत यह पेश हो गई कि प्रोफ़ेसर रिज़वी के साथ मियाँ रज्जू ने घर पर जो बदतमीज़ी की थी उसका ज़िक्र अब्दुल शकूर साहब ने एक दिन बाद लाइब्रेरी में कर दिया। यह किस्सा यहाँ तक फैला कि अब कोई मुख्तार साहब से रिश्ते की बातचीत करने को तैयार नहीं। जहाँ कहीं वह बात चलाते वहीं जवाब मिलता कि ऐसी जगह रिश्ता करके कौन अपनी इज्जत खोये।

इसके बाद क्या हुआ कुछ ज्यादा मालूम नहीं। प्रोफ़ेसर रिज़वी के बारे में यह ज़रूर मालूम हुआ कि उन्होंने अपनी लड़की का रिश्ता बिरादरी के एक ऐसे गरीब लड़के से तय किया जिसने सिर्फ़ मैट्रिक तक पढ़कर नसर के कपड़ों की एजेंसी का काम शुरू किया था। बाक़ी रहे मुख्तार साहब के अंडर-ग्रेजुएट साहबजादे तो उनका रिश्ता कहाँ हुआ—इसकी कुछ जानकारी नहीं। यूँ ही कुछ उड़ती-पड़ती सी खबर मिली कि मियाँ रज्जू ने आजकल एक "ऐन्टीमैरेज एसोसिएशन" क़ायम की है जिसका काम शादी के खिलाफ़ प्रोपेगेंडा करना है। बहुत-से अंडर-ग्रेजुएट लड़के इसके मेम्बर हैं।

मेरी दुआ है कि खुदा इस एसोसिएशन को कामयाब करे क्योंकि और कुछ नहीं तो कम-से-कम इससे इतना फ़ायदा ज़रूर होगा कि वे अंडर-ग्रेजुएट लड़के, जो अपने खानदान के लिए बोझ बने हुए हैं, शादी करके अपनी बीवी और ससुराल वालों के लिए मुसीबत न बन सकेंगे।

चन्दा

गुलाम अहमद 'फुरक़त'

भीख मांगने वालों से चन्दा मांगने वालों तक और सड़कों पर दवा बेचने वालों से रेल के डिब्बों में चनाजोर गर्म, मञ्जन और चूरन बेचने वालों तक दांव-पेंच और पैंतरों का एक सिलसिला बन गया है जिन्हें जाने बिना कोई आदमी इस प्रकार का धन्धा सफलता से नहीं चला सकता। इनमें चन्दा मांगने वालों का काम तो और भी लोहे के चने है क्योंकि उसमें पास से कोई चीज़ दिए बिना दूसरे से पैसा वसूल करना होता है। इसलिए इसमें ज़बान की कारीगरी के अलावा मनोविज्ञान यानी साइकोलाजी का समझना भी ज़रूरी है और बेशरमी इसकी ज़रूरी शर्त है ही। इसमें बड़ी ज़िम्मेदारी और दिलगुर्दे की ज़रूरत होती है। यही वह कूचा है जिसमें अच्छे-अच्छे ग़ालिब फ़ंस गए है

"गालियां खाके बेमज़ा न हुआ

अगर किसी आदमी में ये सारी ख़ूबियां हों तो उसे सारा जीवन चन्दा जमा करने में बिता देना चाहिए। अब इस चन्देबाजी के सिलसिले में एक आप- बीती सुनिए—

एक दिन हम और हमारे दो दोस्त, जो हमारी ही तरह काफ़ी अर्से से बेकार थे बैठे गप्पबाजी में मस्त थे कि एक साहब जो अब माशाअल्लाह चोटी के शायर, लेखक और देश-सेवक हैं और जिनसे उस समय हमारी बेतकल्लुफ़ी भी थी आ गए और बोले, "अमां! कहो, क्या कर रहे हो?" हमने कहा

"यही रफ़्तार बेढंगी जो पहले थी सो अब भी है

वक्त काट रहे हैं। सुबह से चार पैकेट सिग्रेट और एक दर्जन दियासलाई का बक्स फूँक चुके हैं और अब

सुबह करना शाम का लाना है जुए शीर का।"

बोले, "तो सुनो, हम एक काम दिलाते हैं।" हमने कहा, "मगर काम तो आज तक हमने किया ही नहीं। इसलिए पहले काम के बारे में बताओ।" वह बोले, "काम वह है जिसमें हल्दी लगे न फिटकरी और रंग चोखा आए।" हमने कहा, "शहतीर तो नहीं उठवाओगे?" बोले, "बिल्कुल नहीं।" दूसरे साहिब बोले, "सड़क की बजरी तो नहीं कूटनी पड़ेगी।" बोले, "नहीं" तीसरे साहिब बोले, "जेब काटना?" बोले, "बिल्कुल तो यह नहीं, मगर इससे कुछ मिलता-जुलता काम जरूर है।" हमने कहा, "तरसा क्यों रहे हो? बताते क्यों नहीं?" बोले, "जरा छुरी के नीचे दम लो।" इसके बाद सिग्रेट का एक लम्बा कश लेते हुए बोले, "भाई! बात यह है कि हम लोग चन्दे से एक मुशायरा कर रहे हैं और इसके लिए चन्दा जमा करना है।" इस पर हमने कहा कि "इसका मतलब यह है कि आजकल आप भी हमारी तरह बेकार हैं।" बोले, "ऐसा तो नहीं है। मैं इसका वैतनिक सेक्रेटरी हूँ।" हमने कहा, "खैर, तुम्हारा मामला तो ठीक है। मगर हम लोगों की क्या पोजीशन होगी?" बोले, "यही जो इस वक्त है।" हमने कहा, "यानी चन्दा जमा करने के बाद भी हम मुफ़लिस के मुफ़लिस रहेंगे।"

बोले, "रुपया वसूल हो गया तो रोजी, नहीं तो रोजा—पचास-पचास फ़ीसदी बेकारी और बाकारी की सम्भावना है, मगर चन्दा वसूल होने पर पच्चीस फ़ीसदी कमीशन गले-गले पानी तक मिलेगा।"

हमने कहा, "चन्दा वसूल न होने की सूरत मे क्या पोजीशन होगी ?" बोले, "खाना-पीना और जेब खर्च हमारे जिम्मे।"

हमने कहा, "चन्दा मिलने की उम्मीद तो कम ही है।" बोले, "यह बात नहीं क्योंकि जो साहब यह मुशायरा कर रहे है उन पर जनता को बहुत विश्वास है, इसलिए चन्दा न मिलने का सवाल ही पैदा नही होता। शहर के लिए तो इन्तजाम हो गया है, अब करीब के दो शहरो मे काम करना है। उम्मीद है वहां से भी काफी चन्दा जमा हो जाएगा। लेकिन चलने से पहले आप लोगों को इस सिलसिले में कुछ बातें नोट करना जरूरी है क्योंकि चन्दा लेने से पहले कुछ दांव-पेंच दिखाने होते हैं। इसके बाद कहीं मतलब की बात मुँह से निकाली जाती है।" इस पर हमारे दोस्त बोले, "फिर उसका 'रिहर्सल' क्यो न कर लिया जाए ?"

बोले, "जी हाँ। जाने से पहले कान धरकर सुन लीजिए कि सबसे पहले आपको यह देखना होगा कि जिसके पास आप गए हैं और जिससे आप बात कर रहे हैं उसका मूड कैसा है ? मतलब यह कि वह अपनी 'बीवी-वीवी' से लड़े तो नही बैठा है। यदि इस बात का पता चल जाए तो मुनासिब है आप ऐसे केस को छोड़ दें क्योंकि उससे बात करने मे खतरा है। ऐसे लोग अगर धोबी से नहीं जीत पाते तो गधे के कान ऐंठने पर उतर आते है। दूसरी बात यह देखनी होगी है कि आप जिस शिकार की खिदमत मे निकले हैं उसका लिबास और शक्ल-सूरत कैसी है। जैसे कि आप किसी दढ़ियल के पास गए हैं तो आपको दाढ़ी की खूबियों पर बातचीत करनी होगी। अगर दाढ़ी पर खिज़ाब लगा है तो खिज़ाब की खूबियां गिनानी होगी और दो-चार ऐसे खिज़ाबों के बारे मे बताना होगा जिनसे जिन्दगी भर के लिए बाल काले हो जाते हैं। इसी तरह अगर वह शख्स तहमद बांधता है तो तहमद की तारीफें अहमियत और उसके बांधने वाले की सेहत और कुछ ऋषियों, सूफियो के तहमदों की खूबियां बयान करनी होंगी। आखिर मे उसे पानी पिलाते-पिलाते चन्दा तक लाना होगा। याद रखिए, कि आखिर मे आपको बहुत ही रुंधी हुई आवाज

में अपनी शान खतरे पर ओढ़नी होगी । अब यूं समझ लीजिए कि जैसे आप-को किसी अच्छी कान्फ्रेंस के लिए चन्दा लेना है और आप एक ऐसे साहब के पास गए हैं जो नया जूता पहने बैठा है तो आप अलैक-सलैक के बाद जूतम् को दिलचस्प बनाने में लिप्त हो सकते हैं, "साहिब ! मुहावरे भी कई बार मज़ा दे जाते हैं । अब देखिए ना, जूतों के बारे में मुहावरे बनाने वालों ने क्या-क्या मुहावरे बनाये हैं । जूता चलना, जूते चुराना, जूतियों में दाल बँटना, जूते खाना वगैरा-वगैरा । इसके अलावा इस तरह की आदतों और अदाओं में कितनी भी नफरत क्यों न हो, आपको उसकी ऐसी तारीफ करनी होगी कि वह उसे अपने बारे में गुस्सा हो जाए । जैसे वह कहे कि मैं अखबार पढ़ना वक्त बर्बाद करना समझता हूँ तो आप कह सकते हैं, हाँ साहिब ! अब आप इसे वक्त की बर्बादी न समझेंगे तो क्या हम समझेंगे । आप जवानी में इतने अखबार पढ़ बैठे हैं कि अब आपको इस बुढ़ापे में अखबार पढ़ने की ज़रूरत ही क्या है ?" अगर वह कहे कि मैं पत्र-पत्रिकाओं पर रुपया व्यर्थ नहीं फूँकता तो आप फ़ौरन कहें, "आजकल की घटिया पत्रिकाएँ इसी योग्य हैं कि उन पर लानत भेजी जाए । मगर हुज़ूर ! गुस्ताखी मुआफ़ । आपके बारे में एक साहिब ने एक ऐसी बात कही है कि कम-से-कम मैं तो आपकी दर्वेशी और दानशीलता का क़ायल हो गया, मगर वह कहते थे कि आपको हरगिज़ पता न चले, नहीं तो बिगड़ जाएँगे । कहते थे कि साहिब, वह तो पत्रिकाओं और शिक्षा संस्थाओं की इस प्रकार सहायता करते हैं कि एक हाथ की दूसरे हाथ को खबर नहीं होने पाती हुज़ूर ! फ़ारसी शायर ने आप जैसे लोगों के लिए ग़लत नहीं कहा है कि—

वहर रंगे कि ख्वाही जामा मी पोश
मन अन्दाज़-ए-क़दत ए मी शनासम

[चाहे जिस तरह के कपड़े भी तू पहन ले, मैं तेरे क़द को बहुत अच्छी तरह जानता-पहचानता हूँ ।]

और इसके बाद जेब से सिग्रेट की डिबिया निकालकर पेश करनी होगी या और कुछ नहीं तो मकान की सफ़ाई-सुथराई की खूबियाँ बतानी होंगी

चाहे वह किसी पूरे पर ही क्यों न हो। इत्तिफाक से बातों के दौरान अगर उन साहब का कोई गोरा-चिट्टा लड़का कहीं दूर खेलता दिखाई पड जाए तो आप अनजान बनकर बातों-बातों में पूछ सकते हैं, "साहिब ! क्या आपने अपने घर का कुछ हिस्सा किसी अंग्रेज को किराये पर दे रखा है ?" और जब वह इन्कार करे तो बडी संजीदगी से एक झूठी कसम खाकर कहें कि "साहिब ! अभी-अभी आपके आँगन में एक अंग्रेज का बच्चा दिखाई पड़ा था।" अगर मोटे-ताजे हों तो 'तन्दुरुस्ती हजार नेमत है" पर बातचीत शुरू कर दीजिए, अगर दुबले-पतले हों तो आप कह सकते हैं—"रुस्तम सुहराब और इस्फन्दयार भी देखने में आप ही जैसे दुबले थे मगर ताकत थी कि खुदा की पनाह ! अल्लाह हम जैसे कमजोरों को उनके कहर से बचाए।" मगर चूँकि आपको बहुत से लोगों के पास जाना है, इसलिए हर एक को कम-से-कम वक्त देना होगा।"

इन सब वसीयतों और हिदायतों के बाद वह हमें करीब के एक शहर में ले गए। वहाँ के कुछ रईसों और ठेकेदारों के नाम, पते और आदत-मिजाज का कार्ड पहले से उनके पास था। चलने से पहले हमारे एक दोस्त बोले, "ऐसा कीजिए कि अच्छे सिग्रेट के दो टिन खरीद लीजिए ताकि चन्दा माँगने से पहले चन्दा देने वाले को पटाने और समझाने के लिए इन्हें काम में लाया जा सके। एक साहिब बोले, "भाई ! एक-एक सिग्रेट पीकर देख लो। ऐसा न हो कि पुरानी सिग्रेट हो और तम्बाकू खराब हो।" इसलिए गोल्ड फ्लेक के दो टिन खरीद लिए गए और एक टिन काटकर सबने एक-एक सिग्रेट की बानगी ली। स्टेशन पहुँचने पर हमारे एक दोस्त बोले, "देखिए, टिकट फ़स्ट क्लास के लीजिएगा क्योंकि थर्ड और सैकण्ड क्लास में तो जगह ही नहीं मिलती। दूसरे हो सकता है कि फ़स्र्ट क्लास ही में दो-चार केस मिल जाएँ।"

देश-सेवक राजी हो गये। ट्रेन में बैठने के बाद हमारे सामने की सीट पर एक सूटेड-बूटेड साहब बैठे थे जिनका पेट बढ़ा हुआ था। उनको देखकर हमारे दूसरे मित्र बोले, "साहिब, मीर तकी 'मीर' के एक शेर की किसी शायर ने क्या खूब पैरोडी की है। फर्माते हैं :

से भागते भागते थककर और [illegible] लिए पीछे मुड़े [illegible]
[illegible] (इन्क़िलाबी) [illegible]।

अफ़सोस कि दुनिया से सफ़र कर गए बुद्धू
आँखें भी खुली रह गईं और मर गए बुद्धू

[illegible] और [illegible] के बीच जाने शायद की जान छूट गई और हमारे दिल धुकधुका कर फिर उस ओर ही बार-बार पहुँचे। इतने में जिस जगह हमारा [illegible] था, वह स्टेशन आ गया और जब हम लोग डिब्बे से उतर रहे थे तो एक आदमी [illegible] शायद की बाईं ओर बैठे मुस्करा रहे थे। देश-सेवक [illegible] बोले, "यह बन्दा [illegible] नहीं।"

शहर में जहाँ-जहाँ हम लोग गए और जहाँ-जहाँ खातिरदारी हुई, इसका अन्दाजा इससे कीजिए कि जब वापसी पर हम लोग स्टेशन के रेस्तराँ में चाय पीने बैठे तो देश-सेवक ने मुर्दा आवाज़ में कहा, "जरा सोच समझ कर आर्डर दीजिएगा क्योंकि इस चाय के दाम हमें अपने पल्ले से देने पड़ेंगे।"

पोलिटिकल वाइफ़

शीन मुज़फ़्फ़रपुरी

इन्सान की किस्मत भी अजीब चीज है। जब सोती है तो ऐसा सोती है कि कयामत का शोर भी उसे जगा नहीं सकता। दुनिया में ऐटमबम फट रहे हों या हाइड्रोजन बम! इस अफीमखोर मुरदार के कान पर जूँ तक भी नहीं रेंगेगी। हाँ, जब इस जालिम का अपना मूड होगा तब एकदम थ्री हार्स पॉवर वाली अँगड़ाई लेती हुई ऐसा जगती है कि नींद की गोलियाँ खिलाने पर भी ऊँघने का नाम नहीं लेती। अपनी किस्मत का भी कुछ यही हाल हुआ। होश सँभाला तो अपनी किस्मत को घोड़े बेचकर सोते हुए पाया। बरसों मिन्नतें और खुशामदें करके जगाता रहा कि ओ किस्मत! खुदा के लिए जाग भी जाओ। कहीं तुम्हारी नींद इतनी लम्बी न हो जाए कि तुम जागो तो मुझे सोया हुआ पाओ। पर जागना तो एक तरफ जालिम ने करवट तक नहीं बदली और मैंने तंग आकर उस पर फातिहा पढ़ दी। अपने जन्म पर लानत भेजकर अपनी सदाबहार बदकिस्मती का हो रहा। मुझ पर जवानी तो कभी आई नहीं। बस लड़कपन के बाद पलक झपकते में अधेड़पन में कदम रखा और खुशकिस्मत लोगों को हसरत से देखते रहना महबूब मशगला बन गया।

आप समझ गए होंगे कि लड़कपन और अधेड़पन के दरमियान जो फ़ासला है, उसे तै करने के लिए भी कुछ-न-कुछ वक्त तो लगा ही होगा, लेकिन यह सफ़र आपका ख़याल है। फिर भी आपकी तसल्ली के लिए मैं इतना तो इक़रार कर ही लूँ कि लड़कपन के बाद जवानी का अपने नाम महज़ पैगाम आया था। अभी मन का मज़मून पढ़ ही रहा था कि अधेड़पन का एक्सप्रेस सीटियाँ देता पहुँच गया। सच पूछिए तो अब बचपन की याद भी ख़्वाब बनकर रह गई है। कभी-कभी तो ऐसा शक होने लगता है कि मैं अधेड़ पैदा ही हुआ था और अधेड़ ही मरूँगा, क्योंकि दौलत बूढ़े होने के मौक़े ही नहीं देगी। अधेड़पन की हद से ज़्यादा तूल पकड़ने देखकर सदाबहार औरतों की तरह मैंने भी अपनी उम्र को एक क़ैद की तरह रख छोड़ा है और अपने पैदा होने की कहानी वहाँ से शुरू किया करता हूँ जहाँ से पैदा होने वालों का बोझ उठाना पड़ता है। वरना अधेड़पन तो ऐसा मज़ा दे गया है कि बड़े-बड़े नौजवानों के मुँह में पानी आ गया है।

जिस तरह सावन की घटा का कुछ भरोसा नहीं कि कब बरस जाए, रूठी हुई औरत और रूठी हुई क़िस्मत का भी कुछ भरोसा नहीं कि कब मेहरबान हो जाए और वह भी ऐसे में जबकि औरत और क़िस्मत बेनकेल भी हों। चुनांचे मुझपर क़िस्मत और औरत के मेहरबान होने का वाक़िया कुछ इसी तरह गुज़रा है जिसे मैं हर्फ़-ब-हर्फ़ सुना देना चाहता हूँ। लाखों का न सही किसी एक का भी भला हो जाए तो कम-से-कम एक नेकी तो मेरे नाम लिखी ही जाएगी क्योंकि क़िस्मत और औरत के मेहरबान होने के बाद मेरा वह शऊर ख़त्म हो चुका है जो अच्छे-बुरे में भेद करता है। इसलिए मैं आँख बन्द करके महज़ जिए जा रहा हूँ। अच्छे-बुरे का हिसाब रखना जिसका काम है, वह यक़ीनन अपने फ़र्ज़ से ग़ाफ़िल नहीं होगा। अब तो वह वक़्त आ गया है जबकि मैं एक ही तरह की क़िस्मत और एक ही तरह की औरत से पीछा छुड़ाने की कोशिश कर रहा हूँ। लेकिन पीछा छूटता नज़र नहीं आता। ख़ास तौर पर औरत ज़ात के बारे में तो आप जानते ही हैं कि उसकी रस्सी

इतनी लम्बी होती है जो मैटरनिटी होम से शुरू होकर कब्रिस्तान पर खत्म होती है।

अब आप कलेजा थामकर लाला घसीटा चन्द लाला मसीना की हैरतअंगेज दास्तान सुनिए और हो सके तो फर्स्ट-एड या कम-से-कम एक गिलास ठण्डे पानी का बन्दोबस्त कर लीजिए। मैं घसीटा चन्द मसीना खुदा को हाजिर-नाजिर बनाकर धर्मग्रन्थ और मदारिस वाला हलफ लेकर कहता हूँ कि जो कुछ कहूँगा सच कहूँगा। देसी घी में वनास्पती घी यानी मिलावट से काम नहीं लूँगा। जिन्दगी में पहली बार सच बोलने की ठानी है ताकि अपने झूठ का रिकार्ड बेदाग न रह जाए। इसलिए आप मुझ से एकदम खालिस सच की उम्मीद रखिए।

यह बात मुहल्ले के चन्द सरपरस्त बड़े-बूढ़ों के सिवा किसी को मालूम नहीं कि मेरा बाप लाला मसीना एक माहिर पंसारी था जिसके नाम पर मुहल्ले वालों ने दो-तीन बुरे नाम रखे थे, बल्कि यूँ कहिए कि शहर के हर मुजक्की-पसन्द शख्स को मसीना कहकर पुकारते थे। लोग अपनी जबान में मेरे बाप को 'चार सौ बीस' कहा करते थे, क्योंकि मेरे बाप को मिट्टी से सोना बनाना आता था—उसे सौदा बनाने और बेचने का फन आता था। उसका कौल था कि दुनिया की हर चीज बिकती है और अगर कोई कुत्ता भी दुकान के बाहर पड़े खाली कनस्तर में पेशाब कर देता तो मेरा बाप उसे भी जाया नहीं जाने देता। खाने के तेल में नहीं सही जलाने के तेल ही में सही, किसी-न-किसी में डालकर उसे भी बेच डालता। दरअसल मुहल्ले वालों को मेरे बाप की इन्हीं गैरमामूली काबिलियतों से जलन थी। मेरा बाप अपनी जरा-सी दुकान से हजारों रुपये पैदा किया करता था लेकिन बजाहिर कुछ भी नजर नहीं आता था। लोगों पर यह रौब बैठा हुआ था कि लाला मसीना ने लाखों रुपये घर में गाड़ रखे हैं। मगर यह भेद तो बाप के मरने के बाद मां से खुला कि बाप ने अपनी कमाई के हजारों रुपये एक ऐसी जगह दफन कर रखे थे जहाँ से खोद कर निकाले नहीं जा सकते थे। सुनते हैं शहर के बाहर किसी जगह पर कोई मशहूर तवाइफ थी और वह तवाइफ कुछ यों ही मशहूर

रही थी। [illegible] बाप मेरा बाप भी था। [illegible] की भट्टी भी चलाती थी। मेरे बाप ने पहली शादी [illegible] (दो [illegible]) भट्टी [illegible] [illegible] थी। [illegible] रहता था। [illegible] और [illegible] के लिए घर की औरत [illegible] है और [illegible] [illegible] था, क्योंकि [illegible] भट्टी वाली लगाइन की तरह गई थी और [illegible] को भी मालूम हो कि जिस तरह [illegible] [illegible] उसी तरह घर की औरत अपने मर्द का [illegible] हुई बाहर की औरत का नशा लगा देती है। जब मेरा बाप भट्टी वाली लगाइन से बाज न आया तो मेरी मां खुद ही मेरे बाप से बाज आ गई। उसने बीवी की बजाए नौकरानी का रोल अदा करना शुरू कर दिया, जिसकी खबर उन दोनों के सिवा किसी तीसरे को न हो सकी। मेरे बाप को मेरी मां के बदले हुए रोल से कोई शिकायत न हुई।

मैं उसी बाप की अकेली औलाद हूँ। चूँकि मेरे भाई-बहन पैदा ही नहीं हुए, इसलिए अपने बाप के सारे जौहर और कमालात का मैं अकेला वारिस बन गया। शादी से पहले मां ने मुझसे क़ौल लिया था कि मैं अपने बाप के रास्ते पर नहीं चलूँगा और उसकी तरह की पार्टनर किसी को नहीं बनाऊँगा। लेकिन मैंने अपनी बीवी के हाथों की मेहँदी छूटने से पहले ही इस क़ौल का क्रियाकर्म कर दिया। अपने बाप के क़ौल का लिहाज करते हुए एक पार्ट-टाइम लगाइन मैंने भी ढूँढ निकाली। उसके पास दारू की भट्टी तो नहीं थी, मगर उसने वह काम किया कि आज मेरी जिन्दगी नशे में झूम रही है। उसका नाम फूलकुमारी था जिसे चाहने वाले प्रेम बत्तीसी के नाम से याद

करते थे। मैं तो सियासी आदमी हूँ, फूलकुमारी के रंग-रूप और उसकी जवानी की आनबान को बयान करने के लिए शब्द कहाँ से लाऊँ। अगर आपकी समझ में आ सके तो यों समझ लीजिए कि जिसको गुलाम बनाना होता था उस पर वह एक नज़र डाल देती थी। हाँ एक छोटी-सी कहानी याद आती है · किसी राजा के पास राजधानी से बहुत दूर एक ख़ूबसूरत बाग था जिसमें रंग-बिरंगे फूल लगे थे। एक बार ऐसा हुआ कि कई साल तक उस बाग में कलियाँ तो खिलती रहीं लेकिन फूल नहीं खिलते थे। राजा ने परेशान होकर बड़े-बड़े माहिरों से पूछा मगर कोई न बता सका। आख़िर एक शायर ने राजा की मुश्किल हल कर दी। वह अपनी महबूबा को लेकर राजा के साथ बाग में पहुँचा तो एकाएक सारी कलियाँ फूल बन गईं। राजा के पूछने पर शायर ने बताया कि जब औरत मुस्कराती है तब फूल खिलते हैं और जब औरत मुहब्बत करती है तो चाँद चमकता है। तो वह औरत भी कोई फूलकुमारी होगी जिसकी मुस्कराहट ने राजा के चमन के फूल खिलाए थे। जिन लोगों ने सिर्फ़ पर देखा है शायद उनकी समझ में यह बात न आ सके। मगर जिन लोगों ने दुनिया देखी है वे फ़ौरन समझ जाएँगे कि मैं क्या कहना चाहता हूँ। फिर भी अपना तजुर्बा बता ही दूँ कि घर की औरत मुस्कराती है तो बच्चे पैदा होते हैं और जब बाहर की औरत मुस्कराती है तो फूल खिलते हैं।

दरअसल इसी फूलकुमारी ने मेरी किस्मत का सितारा चमकाया। वह फूलकुमारी से फूलरानी बनी और अब रिटायर्ड होकर फुलिया के नाम से सुबह से शाम तक सब्ज़ी मार्किट में बैंगन बेचती है और रात को ठर्रे का अद्धा पीकर अतीत की गलियों में भटकती हुई सो जाती है। मेरी सोई हुई किस्मत ने इसी फुलिया की पाज़ेब की झंकार पर पहली अंगड़ाई ली थी जिसका ज़िक्र आगे चलकर आयगा। यहाँ तो सिर्फ़ यह इशारा करना था कि किस्मत के हज़ारों रूप होते हैं जिनमें एक रूप औरत भी है।

अब असल कहानी शुरू होती है।

इस बैकग्राउंड से यह तो आपने अन्दाज़ा कर ही लिया होगा कि मेरे अन्दर कोई ग़ैरमामूली काबिलियत है, यही ग़ैरमामूली काबिलियत जो

डेलिगेशन्स और मीटिंग वगैरह करने के लिए ज़रूरी हुआ करती है। यानी आत्मा की आवाज़ को दबा देने के लिए साउंड प्रूफ़ बन जाने वाली क़ाबि-लियत। जिसे साउंड प्रूफ़ बनने की तरकीब नहीं आती उसे सीधा रुक्न नहीं आता। आत्मा की आवाज़ और पब्लिक की आवाज़---ये दोनों आवाज़ें हमेशा सरकशी की राह में हायल हैं। इसलिए सियासत का पहला बुनियादी उसूल यही है कि इन दोनों आवाज़ों को दबाने के लिए अपने अन्दर साइलेन्सर लगाओ।

अपनी इसी ग़ैर मामूली क़ाबिलियत की बदौलत सबसे पहले मैंने एक मोटे ब्लैक मार्केटियर और स्मगलर की नमकख़्वारी शुरू कर दी। जी हाँ! नई सियासत का सफ़र कहाँ से शुरू होता है और कहाँ ख़त्म होता है उसे ज़बान पर लाने से क्या फ़ायदा कि कुर्सी से तरह-तरह के क़ानून पाए जाते हैं। फिर भी इतना कह देना तो ताज़ीराते-हिन्द की किसी दफ़ा के अधीन नहीं आ सकता कि जिस दिन पैसे की मदद के बग़ैर असेम्बली और पार्लिया-मेण्ट में जाने का रास्ता खुल जाएगा उसी दिन सियासत की शुरुआत ब्लैक मार्केटियर की दोस्ती से करने का चलन ख़त्म हो जाएगा।

ब्लैक मार्केटियर छोटालाल मोटामल से मेरी गाढ़ी छनने की एक वजह यह भी थी कि मैं उसका हम निवाला, हम प्याला होने के साथ-साथ कभी-कभी उसका हम-ज़ुल्फ़ होने की सआदत भी हासिल कर लेता था। ज़ुल्फ़ तो बहर हाल मेरी ही तलाशी का हासिल होती थी। छोटालाल मोटामल इस ज़ुल्फ़ के परेशान होने के लिए अपने कंधे पेश कर दिया करता था। और मैं उस परेशान ज़ुल्फ़ को फिर से सँवारकर घर पहुँचा दिया करता था। अगर सँवारते-सँवारते मेरे कंधों पर भी कोई ज़ुल्फ़ परेशाँ हो जाया करती हो तो उसका कोई हिसाब-किताब नहीं था। मैं यह राज़ क्यों ज़ाहिर करूँ कि हमारे कंधों पर ऐसी-ऐसी ज़ुल्फ़ें भी परेशान हुईं जिनके आस-पास बज़ाहिर परिन्दे भी पर नहीं मार सकते थे। आप तो जानते ही होंगे कि चोरबाज़ार और चोर दरवाज़ा का चोली दामन का साथ हुआ करता है। इन दोनों को एक

लम्बी सुरंग मिलाती है। इन जुल्फों की कमन्द छोटालाल मोटामल के 'डार्क रूम' तक ही नहीं बल्कि बहुत ऊँची कुर्सियों के पायों तक भी पहुँचती थी। अगर ऐसा न होता तो कल का पसीटा आज का लाला घनश्याम न होता जिसकी कोठी के जीने पर करेंसी नोट बिछे हुए हैं और उन करेंसी नोटों के ऊपर वह जुल्फें बिछी हैं जो कभी-कभी तरक्की के पहाड़ पर चढ़ने के लिये रस्से का काम भी देती हैं।

दूर क्यों जाइए खुद मेरी मिसाल मौजूद है। तरक्की की पहली बुलन्दी पर मैं फूलकुमारी की जुल्फ के सहारे पहुँचा था और जहाँ फूलकुमारी की जुल्फ की लम्बाई खत्म हो गई, वहाँ से मैंने अपनी पोलिटिकल वाइफ़ कलावती की जुल्फें थाम लीं और अब मुझे जुल्फों की जरूरत नहीं रही बल्कि जुल्फों को मेरी जरूरत है।

एक दिन मेरे यार लाला छोटालाल मोटामल ने बड़े राज के अन्दाज में कहा, यार पसीटा ! आज तुम्हें जिन्दगी का सबसे बड़ा काम करना है। लाखों का वारा-न्यारा है। मुँह माँगा इनाम दूँगा। एक बड़े आदमी को फाँसना है। वह जो कलकत्ता और बम्बई में अपना लाखों का माल खतरे में पड़ा है उसे निकालकर मार्किट में फैलाना है। अगर उस आदमी ने अपनी मदद न की तो तख्ता उलट जाएगा। बहुत बड़ा सियासी आदमी है। उसका एक इशारा काम कर जाएगा।"

इसके बाद छोटालाल मोटामल ने खुलकर बात की जिसका मतलब यह निकला कि मुझे उस बड़े आदमी के लिए शहर में 'नगीना' छाँटकर लाना था चाहे किसी भी कीमत पर हो। मैंने जितने भी नाम पेश किए, लाला ने सब रद्द कर दिए।

फूलकुमारी को मैंने अब तक लाला की नजरे-बद से बचाकर रखा था। मगर मुस्तकबिल (भविष्य) की देवी मुझ से फूल कुमारी की भेंट माँग रही थी। शायद इसी को कहते हैं कि रखी हुई चीज़ वक्त पर काम आ जाती है। और फिर मैंने दिल पर पत्थर रखकर लाला छोटालाल मोटामल का

काम शुरू किया। इस 'कारोबार' में मुझे तकरीबन १० हजार का मुनाफा हुआ और फूलकुमारी उस दिन के बाद से खोमचे से तरक्की करके सोने के अण्डे देने वाली मुर्गी बन गई। उसका नाम फूलकुमारी की बजाए फूलरानी रख गया। फूलकुमारी ने एक साल के अन्दर दस हजार और पांच हजार के कई पार्सल पहुँचाए। घटिया किस्म लेकर घर-घर लोगों में बाँट दिया करती थी जिसे वह मुझसे ज्यादा जानती थी। अपने लिए उसने कुछ न किया। आज लोगों की तवज्जोह दूसरों की खिदमत करने ही में हुआ करती है। यह और बात है कि आगे चलकर उन्हें धान्-भंगन देने पड़े।

मेरी जिन्दगी का यह साल बड़ा मुबारिक साबित हुआ।

फूलकुमारी उर्फ फूलरानी के करतबों ने एक ही साल में मुझे उस मंजिल पर पहुँचा दिया जहां मैंने अपना नाम बदलने या सही करने की जरूरत महसूस की, लेकिन इससे पहले बाप का नाम बदलना जरूरी था। चुनांचे मैंने अपने स्वर्गवासी पिता को मर्तबा में लाला मनीलाल बनाया और खुद लाला घनश्याम बनकर सोशल वर्कर का रोल अदा करने लगा। सोशल वर्कर होना बड़े काम की बात है। पब्लिक का मिज़ाज यहीं से समझ में आता है जो आगे चलकर सियासत में काम देता है।

एक साल के अन्दर-अन्दर मैं दाल-रोटी से खुश रहने लगा। मां बेचारी यह दिन देखने से पहले ही गुजर चुकी थी। बीवी को घर के कामों से फुर्सत न थी और बाहर के कामों में उसकी कोई दिलचस्पी नहीं थी। हर माह एक नया जेवर, यही उसके सारे ग़मों का इलाज था और तीन-चार बच्चों में उसे मैंने ऐसा फंसा दिया था कि उस पर हर वक्त गोया एमरजेंसी का आलम तारी रहता था।

फूलकुमारी जल्द ही अपनी असलियत की तरफ लौट गई और मैं अपनी असलियत को दफ़ना करके अहम आदमी बनने लगा। फूल कुमारी भट्ठी और सब्ज़ी मंडी की दुनिया में चली गई और मैंने सियासत का रुख किया। मैंने शायद आपको नहीं बताया कि लाला छोटालाल मोटामल भी एक पोलिटि-

कल वर्कर ही था। वह खुद तो ब्लैक मार्केटियर और स्मगलर रहने पर ही संतुष्ट हो गया मगर अपने आदमियों को असेम्बली और पार्लियामेंट में भेजने के लिए एड़ी-चोटी का जोर लगा दिया करता था। वह बड़ा आदमी जिसने हमारा एक बड़ा काम फूल कुमारी की 'सिफारिश' पर कर दिया था वह छोटालाल मोटामल का सियासी गुरु था जिसके एक इशारे ने मेरी किस्मत का पाँसा पलट दिया था और दस हज़ार रुपये इकट्ठे देखकर मेरी बीवी ने भी मुझे "बड़ा आदमी" मान लिया था।

मैंने ज्योंही सियासत का रुख किया कि इलेक्शन आ गया।

और जब इलेक्शन आता है तो बहुत कुछ आता है और बहुत कुछ जाता है, क्योंकि इसके एक हाथ में अन्दर जाने का टिकट और दूसरे हाथ में बाहर निकलने का वारंट होता है। मैंने तो सोच रखा था कि इलेक्शन में वर्कर बनकर अपने जौहर दिखाऊँगा लेकिन किस्मत ने तो मेरे लिए कुछ और ही सोच रखा था। वह दूसरों का वर्कर मुझे बनाने की बजाए दूसरों को मेरा वर्कर बनाने का फ़ैसला किए बैठी थी।

और यहीं से मेरी लाइफ में पोलिटिकल लाइफ दाखिल होती है।

हुआ यूँ कि लाला छोटालाल मोटामल के सियासी गुरु को कांग्रेस के असेम्बली एक उम्मीदवार से मतभेद था जिसके मुकाबले में वह अपने एक पिट्ठू धोकामल झूटालाल को टिकट दिलवाना चाहते थे। क्योंकि धोकामल झूटालाल के पास भी एक फूलकुमारी थी जिसने गुरुजी से ज़बरदस्त सिफारिश कर रखी थी। आखिर यह रस्साकशी यहाँ तक बढ़ी कि गुरु ने धोकामल झूटालाल को दरपर्दा वरगला कर कांग्रेस से इस्तीफा दिलवा दिया और आज़ाद खड़ा करा दिया। हालांकि बज़ाहिर गुरुजी झूटालाल के हरीफ़ को सपोर्ट कर रहे थे।

मगर गुरुजी को इसी सीट के लिए एक और उम्मीदवार की तलाश थी क्योंकि वह ज़्यादह वोटों को इधर-उधर करना चाहते थे ताकि उनकी अपनी पार्टी यानी कांग्रेस का उम्मीदवार लाज़मी तौर पर हार जाए। और उम्मीद-

बार भी ऐसा शातिर था जो कांग्रेसी उम्मीदवार के वोटों पर डाका डाल सके। पीतामल भूरामल को कामयाब बनाने की यही चाल थी।

इस सुनहरे मौके पर छोटालाल मोटामल को दूर की सूझ गई।

छोटालाल मोटामल ने बड़ी राजदारी से बताया, "बसीटा लाला। अपने गुरुजी को कोई और मुनासिब उम्मीदवार नहीं मिल रहा है। अगर कहो तो तुम्हारी बात चलाऊँ। तुम जीत तो न सकोगे लेकिन तुम्हारी वजह से गुरुजी का असल उम्मीदवार जरूर जीत जाएगा और यह भी हमारी ही जीत होगी। तुम हारने की परवाह न करो।"

मेरे लिए यह "बदनाम अगर होंगे तो क्या नाम न होगा" वाला, मौका था। हार की हार में भविष्य की जीत का राज पोशीदा होता है। पहली बार नकली उम्मीदवार बनने ही से दूसरी बार असली उम्मीदवार बनने का चांस मिल सकता है। लेकिन सवाल यह था कि गुरुजी की नजर में मुझ जैसा कच्चा और अनाड़ी आदमी जँच भी सकेगा। मेरी कुछ ऐसी शोहरत भी न थी। काबिलियत का तो खैर बड़े-बड़ों के लिए भी सवाल पैदा नहीं होता, मेरी तो औकात ही क्या थी। बस, एक नकली कैंडीडेट !!

मेरे शक जाहिर करने पर छोटालाल मोटामल ने मुझे हर तरह का इत्मीनान दिलाया जैसे वह मेरे बारे में गुरुजी से सब कुछ पहले से ही तै कर चुका हो। लेकिन जो सबसे अहम और जरूरी बात थी वह उसने बाद में बताई। गुरुजी के पास फूलकुमारी जैसी कोई औरत थी राजकुमारी। सारी बातें फूलकुमारी जैसी थीं। सिर्फ एक बात ज्यादह थी। यानी राजकुमारी पढ़ी-लिखी भी थी और बहुत कारामद सोशल वर्कर मशहूर थी। उनका 'सोशल वर्क' सियासी हल्कों में सीमित था और इन दिनों वह हमारे गुरु की सोशल सर्विस में रहा करती थी। शौहर और सोशल सर्विस में ताल-मेल न होने की वजह से राजकुमारी ने शौहर को सोशल सर्विस पर कुर्बान कर दिया था लेकिन अब गुरुजी को इसके लिए रस्म-रिवाज की खानापूरी के तौर पर एक सीधे-सादे शौहर की जरूरत महसूस होने लगी थी क्योंकि दुनिया का मुँह तो बन्द करना ही पड़ता है।

छोटालाल मोटामल की जबान से इस सनसनीखेज खबर को सुनकर मैं सवालिया निशान बनकर उसका मुँह तकने लगा तो उसने बात साफ कर दी। "तुम उसके पोलिटिकल हस्बैंड बन जाग्रो। गुरु जी को राम करने की यही एक तरकीब हो। इसमें तुम्हारा हर तरह का फायदा है।"

मेरे मुँह में भी पानी आ गया। फिर भी मैंने रस्मी पसोपेश किया, मगर मैं तो चार बच्चों वाली बीवी का शौहर हूँ जो मेरे घर में अपनी पोजीशन काफी मजबूत कर चुकी है।"

"उसको अन्डर ग्राउड कर दो। क्योंकि सियासत में आंचल से हाथ पोंछने वाली घरेलू बीवियां नहीं चलती हैं। तुम्हें आगे बढ़ना है। तरक्की करना है। इसके लिए पोलिटिकल वाइफ़ जादू का असर रखती है। पोलिटिकल वाइफ को अलादीन का चिराग समझो। फिर यह कि वह तुम पर बोझ नहीं बनेगी। बल्कि वह खुद तुम्हारा सारा बोझ हल्का कर दिया करेगी। तुम्हारी मेहनत और काबिलियत सिर्फ इतनी चाहिए कि तुम निहायत सफाई से उनके शौहर का रोल अदा कर सको।"

किस्मत में तरक्की और कामयाबी लिखी थी इसलिए छोटालाल मोटामल की कारगर तजवीज फौरन समझ में आ गई। गुरुजी को भला इन्कार क्यों होता। एक तीर से दो शिकार हो गए। एक ही हफ्ता बाद राजकुमारी से मेरी शादी हो गई लेकिन शादी की रस्म यूँ अदा हुई कि बरात मेरी सजी और डोला गुरजी के घर गया। शादी को दो-तीन हफ्ते गुजर गए तब उसे 'सोशल वर्क' से फुर्सत मिली और सैकण्ड हैंड हस्बैंड थर्ड हैंड वाइफ से मुलाकात की और जान-पहचान की और वह भी उस वक्त जब गुरजी को यह ख़याल आया कि मियां-बीवी का एक दूसरे से परिचित होना जरूरी है ताकि किसी महफिल में दोनों एक दूसरे के लिए अजनबी न रहें।

राजकुमारी ने पहली ही मुलाकात में अपनी पोजीशन साफ़ कर ली। कहने लगी, "आप से मिलकर मुझे हर तरह की सिक्यूरिटी का एहसास होने लगा है। खुदा करे हम एक-दूसरे को फ़ायदा पहुँचा सकें। आपको जब भी कोई ऐसा काम आ पड़े जिसमें मैं आपकी कुछ मदद कर सकूँ तो बिला

बतकल्लुफ़ मुझे फ़ोन कर दीजिएगा, मुझे भी जब कभी फ़ुर्सत रहा करेगी, मैं आपको चाय पर बुला लिया करूँगी।"

'शुक्रिया' कहकर मैंने राजकुमारी को अपने हर सहयोग का यक़ीन दिलाया।

फिर इलेक्शन की हमाहमी शुरू हो गई।

मेरी सोई हुई किस्मत तो राजकुमारी के साज़ की झंकार पर जागकर अँगड़ाई ले चुकी थी। अब ज़रा ठंडे पानी का गिलास हाथ में उठा लें तो मैं आपको बताऊँ कि मेरे मुकाबले के दोनों उम्मीदवार हार गए और मैं सिर्फ़ एक वोट की अक्सरियत से ग़लती से जीत गया। यानी जिसको कामयाब कराने के लिए मुझे खड़ा किया गया था वह बेचारा भी हार गया और मैं एम० एल० ए० बन गया। आप तो जानते हैं कि अपने देश के प्रजातन्त्र के ५० फ़ीसदी वोटर अभी सही वोट सही बक्स में सही तरीक़े से डालने के शऊर से वंचित हैं। अगर बैलों की जोड़ी वाले निशान के पास गधों की जोड़ी वाला बक्स भी रखा हो तो अक्सर वोटर दोनों में भेद नहीं कर पाएँगे और सोचेंगे कि चलो इसमें न डाला उसमें डाला, बात एक ही है। अगर ऐसा न हो तो अपने देश के घसीटाओं की किस्मत सदा लंगड़ी-लूली ही रह जाए।

जब मैं एम० एल० ए० बन गया तो मेरी पोलिटिकल वाइफ़ ने प्रेम के राशन कार्ड में मेरे हिस्से का एक यूनिट बढ़ा दिया। यानी वह अब कभी-कभी चाय पर बुलाने के अलावा दिन के खाने पर भी बुला लिया करती थी, क्योंकि रात का खाना तो वह अपने सियासी गुरु के साथ ही खाया करती थी। मेरी अंडर-ग्राउंड वाइफ़ मुझे बड़ा आदमी पहले ही मान चुकी थी, अब वह समझ रही थी कि मैं तरक़्क़ी करके देवता बन गया था।

आख़िर एक बार क़िस्मत ने फिर साथ दिया।

राजकुमारी ने एक दिन फ़ोन करके मुझे दिन के खाने की बजाय रात के खाने पर बुलाया और इस हिदायत के साथ कि गुरुजी को इसकी ख़बर न होने पाए—समझ गए न आप? शादी को छह महीने गुज़र चुके थे और

आज अपनी पोलिटिकल लाइफ से मेरी यह पहली मुलाकात थी जिसमें कोई तीसरा कैरेक्टर नहीं था। किस्मत मेहरबान हो तो बड़े-बड़े नामेहरबान भी मेहरबान हो जाया करते हैं।

एम० एल० ए० बन जाने के बाद ब्लैक मार्किट, लाइसेंस, कन्ट्रैक्ट वगैरा के रहस्य अपनी सारी तफ़सीलात के साथ मुझ पर ज़ाहिर होने लगे और मैंने जनता की भलाई का काम इतनी तेज़ी से करना शुरू कर दिया और मेरी नीम-मेहरबान (अर्ध-कृपालु) पोलिटिकल लाइफ ने अपने ढंग कारु देने वाले ऐसे-ऐसे जौहर दिखाए कि मैंने समझा जैसे सोने की कान का ठेका मिल गया हो, फिर मेरी समझ में आ गया कि कुछ लोग एम० एल०ए०,एम० पी०, मिनिस्टर वगैरह बनने के लिए जान की बाज़ी क्यों लगा दिया करते हैं और यह कि पोलिटिकल लाइफ की उपयोगिता का सिलसिला कहाँ-से-कहाँ तक पहुँचता है।

मैं अपनी जिन्दगी की तफसीलात को अभी आम नहीं करना चाहता क्योंकि मैंने अपनी लाइफ हिस्टरी तैयार करने के लिए माहिरों को काम पर लगा रखा है जो महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, अबुलकलाम आज़ाद वगैरह की लाइफ का बड़ी गहरी नज़र से अध्ययन करके इस बात का अंदाज़ा लगा रहे हैं कि मेरी लाइफ हिस्टरी में इन किताबों से कहाँ तक फायदा उठाया जा सकता है। खिदमत, क़ुरबानी, जद्दोजहद—दुनिया के ज़िन्दा और बड़े आदमियों की जीवनी इसी त्रिभुज के गिर्द घूमती है। मरने के बाद कौन तह्-क़ीक़ात करता फिरता है? किताबों में जो लिख दीजिए वही सनद है।

इससे पहले कि मैं अपनी कहानी का खुलासा खत्म करूँ, चन्द लफ़्ज़ों में कुछ और बता देना चाहता हूँ ताकि आपको पूरी बात मालूम हो जाए। मेरा सियासी कैरियर १५ साल पुराना हो चुका है। सियासत की मेन लाइन यानी असेम्बली, और पार्लियामेंट वाली लाइन पर जितनी भी मंज़िलें आती हैं, उन सबसे गुज़र चुका हूँ। अपनी एक कोठी है, एक बंगला है, एक मिल है, दो कारें हैं, एक दूकान है, बाल-बच्चे कान्वेंट से फ़ारिग होने के बाद

अमरीका और इंगलैंड से ट्रेनिंग पाकर बड़े-बड़े कामों में लग गए हैं। पॉलिटिकल साहब को ज्यादा दिनों तक सुख भोगना नहीं लिखा था, इसलिए उनसे पहले वह मेरी जिन्दगी से चली गई। राजकुमारी बूढ़ी होकर एक सोलन पहाड़ी पर रिटायर्ड लाइफ गुजार रही है। मेरी सोशल सेक्रेटरी चंचल कुमारी, जो फूलकुमारी और राजकुमारी का अमरीका रिटर्न रूप है, वह मेरे पॉलिटिकल साहब नम्बर दो का फ़र्ज़ बड़ी खूबी से अंजाम दे रही है।

और अब मैं सत्ता और शासन की किस मंजिल तक पहुँचा हूं, यह न पूछिए, क्योंकि इसमें ठंडे पानी के गिलास से काम नहीं चलेगा, बल्कि डाक्टर बुलवाना पड़ेगा।

दस्ते-ग़ैब

इक़बाल जाफ़री

मेरी ज़िन्दगी में ऐसी कितनी घटनाएँ बिखरी पड़ी हैं जिन्हें मैं जमा करूँ तो एक मोटी किताब बन जाए। लेकिन शायद एक छोटी-सी घटना आपको इस किताब के विषय का परिचय दे देगी।

मैं भोपाल डिवीज़न के ज़िला आलमपुर में एक तहसील-दफ़्तर का क्लर्क हूँ। इसलिए अगर लोग मुझे बहुत स्याना और धूर्त कहते हैं तो ग़लत नहीं हैं। कई तहसीलदार और नायब तहसीलदार इस तहसील पर राज करने आए और चले गए लेकिन बंदे के मशविरे के बग़ैर किसी की भी गाड़ी आगे न चल सकी। शैतान की इनायतों में दस्ते ग़ैब* इस क़िस्म के दफ़्तरों में बहुत ज़्यादा होती है जिसे चंद बेवक़ूफ़ रिश्वत का नाम देते हैं। बड़ी-छोटी रक़में हमारी जेबों में आने के लिए हमारे इर्द-गिर्द बे-क़रार फिरती हैं और मौका देखकर जेब के अंदर आ जाती हैं। दस्ते-ग़ैब से हम हाथ नहीं खींच सकते। एक तो यह कहकर दिल को तसल्ली दे लेते हैं कि

---

*अदृश्य हाथ—इसका प्रयोग रिश्वत या इस प्रकार की अन्य आय के लिए किया जाता है।

'धन्नासाह के चोर बड़ा से'' वाली बात है। जब स्कूल में गड़ पा रहा
खाने दो क्योंकि उन मौलवी साहब की मिसाल सामने रहती है जिनको
से एक दिन किसी पड़ोसी का मुर्गा चुराकर पका डाला था। मौ
साहब खाना खाने बैठे तो बीवी से मुर्गे के बारे में पूछा और जब मुर्ग
था पता चला तो बे-तहाशा लाहौल पढ़ना शुरू कर दिया। लेकिन मुर्ग
थी, इसलिए बोले "मुझे खाली शोरबा दो, बोटी न दो।" बीवी ने
भी सालन में पतीली में से प्लेट में शोरबा उँडेलना शुरू किया। उनि
से शोरबे के साथ एक टांग भी प्लेट में पहुँच गई। बीवी ने फ़ौरन
वापस उठाने के लिए हाथ बढ़ाया तो मौलवी साहब फरमाने लगे, "
गड़-बड़ाड़ आ रही है तो हर्ज नहीं, आने दो।" हाँ तो जनाब, इस तरह
तहसील के क्लर्कों की दस्ते-गैब गड़-बड़ाड़ होती है। हम कोई कोशिश
करते, बिलकुल हाथ-पैर नहीं हिलाते कोई जद्दोजहद नहीं करते—कुर्सी
बैठे-बैठे रकमें आती रहती हैं। दस्ते-गैब से हम इसलिए भी नहीं
सकते कि यह एक दस्तूर-सा है। बड़े-बड़े अफ़सरों से लेकर मामूली द
तक को उनके ओहदे और काम की किस्म के लिहाज से दस्ते-गैब
है और हम उस दस्ते-गैब को कई दलीलों के सहारे अपने लिए ज
समझ लेते हैं और मन को संतुष्ट कर देते हैं चाहे वह संतुष्ट हो या न

और जनाब, जो घटना मैं सुनाने वाला हूँ वह उस जमाने की है
एक नये तहसीलदार साहब तशरीफ़ लाए थे। उनको यह बात जल्दी
मालूम हो गई कि दफ़्तर का कौन क्लर्क किस काम के लिए मुनासिब है

हमारी तहसील के गाँव नुसरत गंज में मवेशी बहुत हैं लेकिन उ
नहलाने और पानी पिलाने का वहाँ कोई इंतज़ाम नहीं है और न गाँव व
को ही इस बात की कोई फ़िक्र है। नये तहसीलदार साहब ने तशरीफ़
ही सबसे बड़ा काम यह किया कि उस गाँव के बसने वालों की आसानी
सहूलियत के लिए ज़िला के कलक्टर साहब से वहाँ एक तालाब बनवाने
मंज़ूरी ले ली ताकि मवेशियों को पानी पिलाने और नहलाने की सुविधा हो

और कुएँ वगैरह से मवेशी दूर रह सकें। तालाब बनाने की मजूरी के साथ-साथ चंद दिन बाद रकम भी वसूल हो गई। रकम बड़ी थी। गाँव वालों को तालाब की तमन्ना नहीं थी और मामला सिर्फ तहसीलदार साहब, नायब तहसीलदार साहब और इस खादिम तक सीमित था। नतीजा जो होना था वह हुआ यानी गाँव वालों के कल्याण की बजाय तहसीलदार साहब, नायब साहब और खुद मेरे घर के कल्याण का अच्छा-खासा इंतजाम हो गया।

आप जानते ही हैं कि तहसील के दफ्तरों में तहसीलदार और नायब तहसीलदार तो आनी-जानी हस्तियाँ हैं। दो साल बाद नायब साहब और उनके बाद तहसीलदार साहब का तबादला हो गया। नये तहसीलदार साहब ने चार्ज ले लिया और काम शुरू कर दिया। दो-तीन महीने आराम से गुजर गए। एक दिन कागजात पर नजर डालते हुए तहसीलदार साहब ने इस खादिम से फरमाया कि "हम उस तालाब का मुआयना करेंगे जो ढाई साल पहले मवेशियों के नहलाने और पानी पिलवाने के लिए नुसरत गंज गाँव में बनवाया गया था।"

मैंने हँसकर कहा, "जनाब कौन सा तालाब, कैसे मवेशी, कब बनवाया गया था ?"

तहसीलदार साहब इस मजाक से कुछ नाराज हो गए। तब मुझे तफसील से समझाना पड़ा कि तालाब बनवाने के लिए जो रकम मिली थी वह पूरी-की-पूरी पुराने तहसीलदार साहब हजम कर गए थे। इस रहस्योद्-घाटन से नये तहसीलदार साहब चकरा गए। चार्ज भी ले चुके थे। कुछ क्रुद्ध हुए तो मैंने उन्हें बहुत गंभीरता से समझा-बुझाकर ठंडा किया। तहसीलदार साहब फरमाने लगे, "अब तुम बताओ क्या किया जाए। इस मामले की रिपोर्ट आगे बढ़ाई जाए या नहीं ?"

मैंने कहा, "हुजूर ! यह बहुत मामूली बात है, और जिन्हें जाना था वह हजम करके चले गए। बरसों से हम भी खिदमत कर रहे हैं। हमारा हक भी है।"

"तो बताओ न क्या किया जाए ?" वह दुबारा गरम होने लगे।

"इसलिये हुजूर, एक तरकीब दिमाग में आई है।" मैंने जवाब दिया "सांप भी मर जाएगा और लाठी भी न टूटेगी।" "हां जल्दी बको," तहसील-दार साहब ने कहा, "मुझे थकान हो रही है।"

"हुजूर आप फ़ौरन कलक्टर साहब की खिदमत में एक रिपोर्ट पेश कर दीजिए कि आज से ढाई साल पहले गुज़श्ता जश्न में बनाए गए तालाब से गांव वालों को कोई फ़ायदा नहीं पहुंच रहा है। पानी बहुत ज्यादा सड़ता है जिसकी वजह से गांव में तरह-तरह की बीमारियां फैल रही हैं। गांव वालों की तरफ़ से तालाब के बारे में दफ़्तर में बहुत शिकायतें मिली हैं। इसलिए इस तालाब को भरवाने की मंज़ूरी दी जाए- और इस मंज़ूरी के साथ तालाब भरवाने के खर्च का तख़मीना पेश करके रकम की भी मंज़ूरी ले लीजिए। तालाब न तो कभी बना था और न ही भरा जाएगा। पुराने तहसीलदार और नायब ने जो फ़ायदा उठाना था उठाया। अब हमारा वक़्त आया है कि हम भी कुछ खा-कमा लें। बच्चे सर्दी में ठिठुरते हैं। गरम कपड़े बन जाएंगे।"

तहसीलदार साहब भी दुनिया देखे हुए थे। वे मुस्कराए और मुस्कराहट का मतलब यह था कि तजवीज़ पसंद आई। और क्यों न पसंद आती जबकि सांप भी मर रहा था और लाठी सही-सलामत थी।

आगे क्या हुआ, यह बताने की शायद कोई ज़रूरत नहीं। ढाई बरस पहले तालाब बनवाने के लिए वसूल होने वाली रक़म के साथ जो अमल हुआ था वही इस रक़म के साथ हुआ जो उस तालाब को भरने के लिए वसूल हुई थी जो कभी बना ही नहीं था।

अब आप ही बताइये, दस्ते-ग़ैब ने हमारी जेब में बड़ी-बड़ी रक़में आ जाएं तो भला हम क्या करें—हमारा क्या क़सूर ?

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]